THE JAINA antiquary

श्री जैन सिद्धान्त भास्कर

VOL 43 PART I & II

1990

पं० प्रवर बा० प्रभुदास जी स्मृति लेखमाला (१-१४)

पूर्णांक

Pt. Prabhu Das Memorial Articles (1 - 14)

Closing Special Issue.

(Vol. 41 - 1 to Vol 43 - 1 & 2)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्वयंभू-स्तोत्र (हिन्दी)

रूपान्तर —सुबोध कुमार जैन

जिसने स्वयं बोध प्रबोध ज्ञान से
आश्वस्त सबको कर जीविका में,
सुबोधता भी दी मोक्ष मार्ग की
उन आदि प्रभु को प्रणमामि नित्य ही ॥१॥

इन्द्रादि ने क्षीर समुद्र जल से
स्नापित किया मेरु गिरीन्द्र पर जिन्हें,
जो काम जेता जन सौख्यकारी
तं शुद्ध भाव से अजितं नमामि ॥२॥

ध्यान - प्रभा से जिनने मिटाया
घाती करम की प्रकृति सभी ही,
मुक्ती सुपद को पाया जिन्होंने
उन संभव नमूं अनुराग भरके ॥३॥

सपना जिन्हों की देखा सुमात ने
गज अग्नि इत्यादि सभी सुलक्षणं,
जिनके पिता ने गुरुवर कहा जिन्हें
नमूँ प्रमोद से अभिनन्दनं उन्हें ॥४॥

कुवादियों के विवाद जय किया,
प्रमाण नय वाचन से जगत में,
जिन धर्म विस्तार किया जिन्होंने,
उन देव-देवं सुमतिं नमामि ॥५॥

जिनके जनम पूर्व पिता गृहे हुई,
वर्षा रतन की हरि के निदेश से
कुबेर ने पन्द्रह मास तक करी
पद्म प्रभू उन प्रणमामि साधु को ॥६॥

नरेन्द्र धरणेन्द्र सुरेन्द्र ने वचन
धारण किए हैं जिनके स्वचित्त में,
जो आतम का बोध कहें सभा में,
उनही सुपार्श्वं करता नमामि ॥७॥

जो प्रातिहार्यँ अतिशय सुप्राप्त हैं
गुण में प्रवीण हैं निर्दोष प्रभु हैं,
जो लोक मोहान्धंतमः प्रदीप हैं,
उन चन्द्र प्रभु को 'प्रणमामि भाव' से ॥८॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्री जैन सिद्धान्त भास्कर

जैनागम सम्बन्धी षाण्मासिक पत्र

वि० सं० २०४७ वीर निर्वाण सं० २५१६

जून-दिसम्बर १९९०

भाग–४३ किरण-१-२

सम्पादक मण्डल

डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, डा० राजाराम जैन

डा० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', डा० शशिकान्त

डा० ऋषभचन्द्र फौजदार

प्रकाशक

अजय कुमार जैन मंत्री

श्री देवकुमार जैन ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट

श्री जैन सिद्धान्त भवन,

आरा, बिहार

वार्षिक शुल्क (भारत में) —५०) एक प्रति—२५)

वार्षिक शुल्क (विदेश में) —८०) एक प्रति —४०)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विषय-सूचि

लेख	पेज न०
१. जैन परम्परा में मांगलिक स्वप्न और खजुराहों के जैन मन्दिरों में उनका शिल्पांकन ।	१
—डॉ० मारुतिनन्दन तिवारी	
—डॉ० कमलगिरि	
२. योग परम्परा में आचार्य हरिभद्र का योगदान	८
— डॉ० (कु०) अरुणाआनन्द	
३. आचार्य हरिभद्र द्वारा उल्लिखित बिहार के कुछ महत्व पूर्ण स्थान	२२
—प्रो० डा० राजाराम जैन	
४. सिद्धक्षेत्र चूलगिरी बावनगजा:-इतिहास के आलोक में	३१
—डा० कस्तुरचंद कासलीवाल	
५. पं० प्रवर ... प्रभुदासजी का काल-क्रमिक जीवन विवरण 1813 से 1876 ई०)	
— स्मृति लेखमाला-९	
—विदुषीरत्न पं० ब्रजबाला देवी	४२
—सुबोध कुमार जैन	
६ जैन दर्शन में मन की अवधारणा	४९
—राजीव प्रचंडिया, एडवोकेट	
७. श्री जैन सिद्धान्त भवन आरा का ८७ वाँ वार्षिक प्रतिवेदन	५५
—अजय कुमार जैन, मंत्री	
८. साहित्य समीक्षा	५६
९. पं० प्रवर बाबु प्रभुदासजी स्मृति लेखमाला–१०	६१
हमारे पूर्वज —ब्र० पं० चन्दा बाई	
१०. नेपाल में प्रथम जैन तीर्थस्थल के विकास की योजना	६२
—पारसदास जैन	

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

११. पं० प्रवर बाबु प्रभुदासजी स्मृति लेखमाला–११– ६४
श्री स्याद्वाद महाविद्यालय शिक्षानिधि को
प्रभुपरिवार द्वारा प्रदत्त सम्पत्ति
—सुबोध कुमार जैन

१२. सर्वप्रथम संवतोल्लेखवाला शिलालेख ६६

१३. अनुप्रेक्षाएँ / भावनाएँ —मुनि महेन्द्र कुमार ६६

१४. पं० प्रवर बाबु प्रभुदास जी स्मृति लेखमाला-१२ ६७
श्री जैन सिद्धान्त भवन की नींव १५० वर्ष पुरानी
—शान्ति जैन

१५. आचार्य श्री अजित सागरजी महाराज का समाधि मरण ६८

१६. स्वयंभू स्तोत्र (हिन्दी रूपान्तरण)
—सुबोध कुमार जैन

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जैन परंपरा में मांगलिक स्वप्न और खजुराहो के जैन मंदिरों में उनका शिल्पांकन :--

डा० मारुतिनन्दन तिवारी
एवं डा० कमलगिरि ।

भारतीय परम्परा में प्राचीन काल से ही विभिन्न मांगलिक स्वप्नों की चर्चा मिलती है। जैन धर्म और कला वैदिक और ब्राह्मण परम्परा से भी प्रभावित रही है जिसके फलस्वरूप विभिन्न तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षी एवं राम, बलराम, कृष्ण, भरत जैसे शलाकापुरुषों के रूप में विभिन्न ब्राह्मण देवी-देवताओं को जैन देवकुल में सम्मिलित किया गया और जैन-कला-केन्द्रों पर उन्हें शिल्पांकित भी किया गया। इसी प्रकार पूर्ववर्ती मांगलिक स्वप्नों के आधार पर ही जैनों ने मांगलिक या शुभ स्वप्नों की अपनी सूची नियत की जिनकी संख्या श्वेताम्बर परम्परा में चौदह और दि० परम्परा में सोलह बतायी गयी है। जैन मान्यता के अनुसार ऋषभनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर सहित सभी तीर्थंकरों की माताओं ने तीर्थंकरों के जन्मके

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

इन शुभ स्वप्नों का दर्शन किया था। कल्पसूत्र में उल्लेख है कि महावीर के गर्भ समय में आगमन के पूर्व ब्राह्मणी देवानन्दा ने शुभ स्वप्नों का दर्शन किया था। हरिनैगमेषी द्वारा महावीर का भ्रूण देवानन्दा के गर्भ से क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ में स्थानान्तरित किये जाने के बाद त्रिशला ने भी चौदह मांगलिक स्वप्नों का दर्शन किया था[१]।

सर्वप्रथम भद्रबाहु कृत कल्पसूत्र (ल० दूसरी-तीसरी शती ई०) में श्वेताम्बर परम्परा के चौदह मांगलिक स्वप्नों का उल्लेख मिलता है। तत्पश्चात विमलसूरीकृत पउमचरिय (४७३ ई०) एवं हेमचन्द्रकृत त्रिशष्टिशलाकापुरुष चरित्र (१२वीं शती ई० का उत्तरार्द्ध) जैसे श्वेताम्बर ग्रन्थों में तीर्थंकरों के जन्म के पूर्व उनकी माताओं द्वारा देखे गये चौदह मांगलिक स्वप्नों की सूची मिलती है। श्वेताम्बर परम्परा के चौदह मांगलिक स्वप्नों में गज, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी या पद्म या श्रीदेवी (पद्मासीन चतुर्भुजा एवं करों में पद्म से युक्त तथा दो गजों द्वारा अभिषिक्त),[२] पुष्पहार, चन्द्रमा, सूर्य, सिंह, ध्वज, दण्ड, पद्मयुक्त पूर्णकुंभ, पद्मसरोवर (जलचर सहित), क्षीरसमुद्र, देव विमान (विभिन्न पुष्पहारों, चित्रों एवं मूर्तियों से अलंकृत स्तम्भों वाला), रत्नराशि और निर्धूम अग्नि सम्मिलित हैं[३]।

दिगम्बर परम्परा के सोलह मांगलिक स्वप्नों का प्रारंभिक उल्लेख जिनसेन कृत हरिवंश पुराण (७८३ ई०) जिनसेन कृत आदिपुराण (९वीं शती ई०), गुणभद्रकृत उत्तरपुराण (१०वीं शती ई० का पूर्वार्द्ध) एवं पुष्पदन्तकृत महापुराण (९५९-६५ ई०) में मिलता है[४]। दिगम्बर सूची में गज, वृषभ,[५] सिंह लक्ष्मी, चन्द्रमा, सूर्य, मत्स्य, युगल, कलशद्वय, पद्मसरोवर उद्वेलित समुद्र, सिंहासन, विमान नागेन्द्रभवन, अपार रत्नराशि, पुष्पद्वाराद्वय, एवं निर्धूम-अग्नि के उल्लेख मिलते हैं। इस प्रकार न्यूनाधिक दोनों परम्पराओं की सूची लगभग समान रही है। केवल श्वेताम्बर सूची में नागेन्द्र भवन, मत्स्य युगल के स्थान पर सिंह, गज तथा पुष्पहारद्वय एवं कलशद्वय के स्थान पर क्रमशः पुष्पहार एवं पूर्ण कुम्भ का उल्लेख मिलता है।

जैन परम्परा के मांगलिक स्वप्नों की परिकल्पना के सूक्ष्म विवेचन से उनके उदारवादी और व्यापक समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। मांगलिक स्वप्नो की सूची में एक ओर प्रचलित चिह्नों (कलश, मत्स्य-युगल, पुष्पहार) एवं

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रमुख प्राकृतिक तत्वों (सूर्य, चन्द्र एवं जल) के रूप में सरोवर और दूसरी ओर पशु जगत (गज, वृषभ, सिंह) तथा लोकपूजा से सम्बन्धित एवं अन्य देवों (श्रीदेवी या पद्मा, नाग, अग्नि) को सम्मिलित किया गया जो देव-मानव जगत के साथ प्राकृतिक जगत की एकात्मकता और दोनों के संतुलन से सृष्टि-संचालन [illegible] व्यक्त करते हैं। इस प्रकार इन मांगलिक स्वप्नों के माध्यम से वस्तुत: जैनों ने सम्पूर्ण चराचर जगत को समवेत रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जो वर्तमान पर्यावरण-संतुलन की आवश्यकता की पृष्ठभूमि में शताब्दियों पूर्व जैनों के व्यावहारिक चिन्तन को प्रकट करता है।

जैन मन्दिरों का निर्माण लगभग आठवीं शती ई० के प्रारम्भ में हुआ जिसका प्राचीनतम सुरक्षित उदाहरण राजस्थान में जोधपुर स्थित ओसियाँ का महावीर मन्दिर है। नवीं से १३वीं-१४वीं शती ई० के मध्य श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही कला-केन्द्रों पर तीर्थंकरों को समर्पित अनेक जैन मन्दिर बने। आठवीं शती ई० के बाद के सभी क्षेत्रों में जैन मन्दिरों के [illegible] के उत्तरंगों के ऊपर की बड़ेरियों पर इन मांगलिक स्वप्नों का पंक्तिबद्ध अंकन हुआ है जिसका प्रारंभिकतम उदाहरण देवगढ़ (ललितपुर, उ० प्र०) के शांतिनाथ मन्दिर (मन्दिर संख्या १२—८६२ ई०) के प्रवेश द्वार पर देखा जा सकता है। दिगम्बर परम्परा से सम्बद्ध होने के कारण यहाँ सोलह मांगलिक स्वप्नों का अंकन हुआ है।

श्वेताम्बर स्थलों पर प्रवेशद्वारों के अतिरिक्त जैन-मन्दिरों के वितानों पर उत्कीर्ण तीर्थंकरों के जीवन-दृश्यों के प्रसंग को भी जन्म कल्याणक के पूर्व तीर्थंकरों की माताओं को शय्या पर लेटे और चौदह मांगलिक स्वप्नों का दर्शन करते हुये दिखाया गया है। तीर्थंकरों के जीवन-दृश्यों के अन्तर्गत श्वेताम्बर स्थलों पर चौदह मांगलिक स्वप्नों के उत्कीर्णन के उदाहरण कुम्भरिया (बनासकांठा, गुजरात) के ११ वीं शती ई० के महावीर और शांतिनाथ मन्दिरों तथा दिलवाड़ा (माउन्ट आबू राजस्थान) के १२-१३ वीं शती ई० के विमलवसही और लूणवसही में देखे जा सकते हैं[६]।

विभिन्न दिगम्बर पुरास्थलों में खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०) का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है जहाँ चन्देल शासकों के काल में १० वीं से १२ वीं शती ई० के मध्य कई जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ, जिनमें से पार्श्वनाथ (ल० ९५०-७० ई०)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

एवं आदिनाथ (११ वीं शती ई०) मन्दिर ही पूरी तरह सुरक्षित हैं। घण्टई (च० १० वीं शती ई० का उत्तरार्ध) एवं शांतिना मंदिर (१०,२८ ई०) खण्डित रूप में सुरक्षित हैं। इन मन्दिरों के अतिरिक्त जैन धर्मशाला एवं शांतिनाथ मन्दिर [illegible] में लगभग १५ आधुनिक जैन मन्दिर भी हैं जिनके भाग (प्रवेश-द्वार आदि) प्राचीन जैन मन्दिरों के भग्नावशेषों से बने हैं।

खजुराहो के जैन मन्दिरों के प्रवेश द्वारों की बडेरियों पर दिगम्बर परंपरा के १६ मांगलिक स्वप्नों का अंकन अत्यन्त लोकप्रिय था। पार्वनाथा मंदिर के अतिरिक्त यहाँ के अन्य सभी जैन मन्दिरों घण्टई आदिनाथ एवं शांतिनाथ, पर मांगलिक स्वप्न उकरे हैं (चित्र १, २, ३) इनके अतिरिक्त शांतिनाथ मंदिर परिसर के मन्दिर सं० १४ एवं ७, तथा साहूशांति प्रसाद जैन संग्रहालय, खजुराहो के द्वार उत्तरंग पर भी १६ मांगलिक स्वप्नों का उत्तकीर्णन हुआ है। (चित्र ४५)। लगभग सभी उदाहरणों में १६ मांगलिक स्वप्नों के पंक्तिवद्ध अंकन के पूर्व तीर्थंकर माता की शय्या पर लेटे [illegible] है जो घण्टई और आदिनाथ मन्दिरों के प्रसंग में ऋषभनाथ की माता मरुदेवी हैं क्योंकि ये दोनों ही मन्दिर ऋषभनाथ को समर्पित हैं। जिन-माता के समीप ही स्त्री-पुरुष युगल की वार्तालाप की मुद्रा में आकृतियाँ भी बनी हैं जो निश्चय ही तीर्थंकर के माता-पिता हैं जो शुभ स्वप्नों के सन्दर्भ में वार्ता कर रहे हैं। आदिनाथ मंदिर के उदाहरण में माता की लेटी आकृति के ऊपर एक आकाशगामी देव विमान भी उत्कीर्ण है। इन आकृतियों के बाद मांगलिक स्वप्नों का पारंपरिक (क्रमशः बायें से दायें) अंकन हुआ है। विवरण की दृष्टि से मांगलिक स्वप्नों के शिल्पांकन में एकरूपता दृष्टिगत होती है।

खजुराहो के जैन मन्दिरों पर सर्वप्रथम गज की आकृति बनी है जिसके बाद वृषभ और सिंह की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। ये सभी आकृतियाँ शांत व स्थित न होकर गतिमान और सिंह के सन्दर्भ में उग्र दिखाई गयी हैं। गजपीठ पर कभी दो आकृतियाँ भी बैठी हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि घण्टई और आदिनाथ मन्दिर के ऋषभनाथ को समर्पित होने के बाद भी जैन महापुराण के निर्देश के अनुरूप प्रथम स्वप्न के रूप में वृषभ को नहीं दिखाया गया है।

चौथे स्वप्न के रूप में श्री देवी या पद्मा या अभिषेक लक्ष्मी को निरूपित किया गया है। दिगम्बर परंपरानुसार देवी की चतुर्भुज और ध्यान मुद्रा में

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

दोनों पैर मोड़कर पद्म पर आसीन दिखाया गया है। देवी के अधः करों में अभयमुद्रा और जलपात्र प्रदर्शित हैं जबकि दोनों ऊर्ध्वकरों में पद्म हैं। शीर्ष भाग में दो गजों को देवी का अभिषेक करते हुये दिखाया गया है। ज्ञातव्य है कि ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन परंपरा की अभिषेक लक्ष्मी की स्वतंत्र मूर्तियों में भी ओसियां, खजुराहो, एलोरा, कुंभारिया तथा अन्य स्थलों पर यही विशेषताएँ देखने को मिलतीं हैं।

अभिषेक लक्ष्मी के बाद सुन्दर रूप से गूंथे हार का अंकन हुआ है जो पुष्पहार के स्थान पर मुक्ताहार दिखायी देता है। स्मरणीय है कि आदिपुराण में दो पुष्पहारों का उल्लेख हुआ है। हार के अंकन को जीवन्त बनाने के उद्देश्य से खजुराहो शिल्पी ने पारंपरिक शैली में हार के मध्य में ग्रास या कीर्तिमुख (मुक्तावराल) को दिखाया है जिसके मुख से मोतियों की लड़ियाँ निकल रही हैं। खजुराहो के मन्दिरों पर स्थापत्य अलंकरण के रूप में इस प्रकार से अनेकश: अंकन हुआ है।

आगे चन्द्रमा और सूर्य का वृत्ताकार रूपों में अंकन हुआ है, जिनके मध्य में चन्द्र और सूर्य देवों की मानव आकृतियाँ बनी हैं। द्विभुज चन्द्रमा का वाहन अश्व है और उनके हाथों में अभयमुद्रा और कमण्डलु हैं। जैन ग्रन्थों में चन्द्र के हाथ में अमृतघट या शूल का उल्लेख किया गया है। चन्द्र के साथ अश्व वाहन तथा जलपात्र का अंकन जैन परम्परा के साथ ही अग्निपुराण और मत्स्यपुराण के विवरणों से भी प्रभावित है[७]। खजुराहो के कुछ उदाहरणों में चन्द्र की मानवाकृति के स्थान पर वृत्त के मध्य में केवल अश्व वाहन की ही आकृति दिखाई गई है। सूर्य को परम्परानुरूप उदीच्य वेशधारी और उत्कुटिकासन तथा दोनों हाथों में सनाल पद्म से युक्त आकारित किया गया है।

सूर्य के आगे मत्स्ययुगल, कलशद्वय तथा पुष्पालंकृत दिव्य सरोवर[८] एवं उद्वेलित समुद्र का अंकन हुआ है। उद्वेलित समुद्र को एक वृत्त के रूप में दर्शाया गया है जिसमें नक्र, कूर्म मत्स्य, हंस आदि जलचरों का अंकन हुआ है। मन्दिर सं०-८ के उदाहरण में मध्य में समुद्र की मानव आकृति भी बनी है। समुद्र अभयमुद्रा और फल (या जलपात्र) से युक्त है। आगे सिंहासन, दिव्य-विमान, नागेन्द्र-भवन, अपार रत्नराशि और निर्धूम अग्नि उकरित हैं। धर्मचक्र और सिंहों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

से युक्त सिंहासन के समीप ही दिव्य विमान अंकित है। दिव्यविमान के ऊपर अभयमुद्रा और जलपात्र से युक्त एक आकृति बैठी है। नागेन्द्र भवन में तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त नाग और नागी युगल आकृतियाँ दिखाई गई हैं और उनके हाथों में अभयमुद्रा और जलपात्र (या फल) हैं। अपार रत्नराशि के समीप ही अग्नि की मानव आकृति बनी है। श्मश्रु तथा जटामुकुट से शोभित ललितासीन अग्नि के हाथों में अभयमुद्रा और स्रुक प्रदर्शित हैं। यह निर्धूम अग्नि का अंकन है।

खजुराहो में मांगलिक स्वप्नों के अंकन की एक विशेषता यह थी कि इनमें विभिन्न स्वप्नों का प्रतीक के स्थान पर मानवरूप में अंकन अधिक लोकप्रिय था। इन स्वप्नों के शिल्पांकन में खजुराहो के शिल्पी ने प्रतीकात्मक अंकन के स्थान पर उनके यथार्थ रूप को दर्शाने का यत्न किया है। यह भाव समुद्र में विभिन्न जलचरों तथा दिव्य सरोवर में पद्म के अंकन से स्पष्ट है।

पाद – टिप्पणी

१. कल्पसूत्र—३, ३१-४६।

२. लक्ष्मी की ये विशेषतायें स्पष्टतः शुंगकाल से भरहुत, सांची जैसे बौद्ध कलाकेन्द्रों एवं आगे की शताब्दियों में ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन तीनों धर्मों में मथुरा, अमरावती, खजुराहो, भुवनेश्वर, एलोरा (कैलाश मन्दिर) एवं लगभग सभी कलाकेन्द्रों पर उत्कीर्ण उपर्युक्त लक्षणों वाली गज या अभिषेक लक्ष्मी की भारतीय परम्परा में लोकप्रियता का स्मरण कराती हैं।

३. कल्पसूत्र—३, ३१-४६।

४. हरिवंशपुराण — ८, ५८-७४, आदिपुराण—१२, १०४-१२०, महापुराण (पुष्पदन्त) ५८, ५।

५. ज्ञातव्य है कि ऋषभनाथ के अतिरिक्त अन्य सभी तीर्थंकरों की माताओं ने शुभ स्वप्नों में सर्वप्रथम मुख में प्रवेश करता हुआ हाथी देखा था जबकि प्रथम

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तीर्थंकर ऋषभनाथ की माता मरुदेवी ने श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही ग्रन्थों के अनुसार सर्वप्रथम वृषभ देखा था। ऋषभनाथ के वृषभ लांछन के निर्धारण में उपर्युक्त प्रसंग विशेषतः ध्यातव्य है।

६. मारुतिनन्दन तिवारी, जैन प्रतिमा विज्ञान, वाराणसी, १९८१ पृ० ६२-६५, १११-१२, १२१,१२६, १३२-३४, १३९-४३।

७. अग्निपुराण—५१,१, मत्स्यपुराण, ६४।

८. मन्दिर ७ के उदाहरण में सरोवर में पक्षियों की दो आकृतियाँ दृष्टव्य हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

योग परम्परा में आचार्य हरिभद्र का योगदान

—डॉ० (कु०) अरुणाआनन्द

(गतांक से आगे)

पतंजलि के आठ योगांग, भगवद्दत्त के आठ दोष और भदन्त भास्कर के आठ गुण इन तीन भिन्न-भिन्न परम्पराओं का परस्पर जैन परम्परा से संबंध दिखाने के लिए आठ योग दृष्टियों की अभिनव कल्पना आचार्य हरिभद्र के वैशिष्ट्य और गूढ़ विचारों की सूचक है। विद्वानों का मत है कि आचार्य हरिभद्र को अष्टविध दृष्टियों के विभाजन का सुझाव बौद्ध परम्परा के अभिधम्म कोष एवं उसके भाष्य[८८] से मिला होगा और उक्त योजना को विस्तृत रूप देने के लिए ही उन्होंने तीन विभिन्न परम्पराओं से सहायता ली होगी[८९]। उनका यह व्यापक दृष्टिकोण इस बात का प्रतीक है कि उन्होंने साधनाक्रम में तत्वज्ञान की प्राप्ति हेतु चिन्तन की विभिन्न परम्पराओं का अत्यंत सूक्ष्म अध्ययन किया था।

आचार्य हरिभद्र ने दृष्टियों का जो विवेचन प्रस्तुत किया है उसमें यह शंका होती है कि प्रथम चार दृष्टियों में चूंकि मिथ्यात्व विद्यमान रहता है इसलिए

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वे प्रथम गुणस्थानवर्ती हैं, अतः उनका अन्तर्भाव योगदृष्टि की अपेक्षा ओघदृष्टि में क्यों नहीं किया गया। इस शंका के समाधान में यह समझना चाहिए कि मिथ्यादृष्टि होने पर भी प्रथम चार दृष्टियों में स्थित जीवों की वह प्रगाढ़ता नहीं होती जो अन्य सामान्य जीवों में होती है। चूँकि ये चारों दृष्टियाँ आत्मा को सम्यग्दर्शन के समीप लाने में सहायक होतीं हैं इसलिए इनका अन्तर्भाव योगदृष्टियों में किया गया है।

जिस व्यक्ति में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता होती है वही मोक्ष पाने का अधिकारी माना जाता है इसलिए साधना-क्रम में आचार्य हरिभद्र ने सम्यक्त्व को उच्च स्थान दिया है और सम्यक्त्व प्राप्त करने के लिए प्राथमिक अनिवार्य योग्यता के रूप में कुछ आवश्यक नियम निर्धारित किए हैं जिन्हें पूर्वसेवा,[१०] योगबीज[११] और लौकिक धर्म[१२] के नाम से अभिहित किया गया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि पूर्व सेवा में उक्त नियमों का व्यापक एवं स्पष्ट रूप से चित्रण हुआ है। योगबीज एवं लौकिक धर्म में उल्लिखित कर्तव्य पूर्वसेवा में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं।

योग-साधना क्रम के अन्तर्गत पूर्वसेवा में लोक-व्यवहार के कुछ धर्म-व्यापार निर्धारित किए गए हैं जिनका आचरण करने से साधक का दृष्टिकोण आत्मोन्मुख बन जाता है। इसलिए आचार्य हरिभद्र ने दृष्टि के परिमार्जन के चार स्तर बताये हैं। उसके पश्चात् सम्यक्त्व प्राप्त होता है। प्रथम दृष्टि में जीव यमों के प्रति निष्ठाशील बनता है[१३]। इस प्रकार पहली दृष्टि में यम तो सधता है पर अणुव्रत नहीं। वस्तुतः पतंजलि का अष्टांग योग ऐसे व्यक्तियों के लिए निर्धारित प्रक्रिया है जिसने कभी योग साधना नहीं की। प्रारम्भ में व्यक्ति स्थूल दृष्टि से ही यम-नियमों का पालन कर सकता है। चूंकि योग की प्रारम्भिक अवस्था में जीव यम-नियमों के प्रति निष्ठावान बनता है इसलिए पतञ्जलि ने यम-नियम को योग की आधारभूमि के रूप में प्रस्तुत किया है। सूक्ष्म दृष्टि से उनका पालन तो प्रत्याहार नाम पाँचवें योगाङ्ग में सधता है। पतंजलि के यम-नियम हरिभद्र द्वारा प्राथमिक योग्यता के रूप में निर्धारित पूर्वसेवा से साम्य रखते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

यदि पतंजलि के यम को जैनदर्शन सम्मत व्रत केसदृश माना जाए तो यह अनुपयुक्त होगा क्योंकि दोनों में बहुत अन्तर है। जैनदर्शन के व्रत सम्यग्दर्शन अर्थात् यथार्थ श्रद्धान से युक्त होते हैं और सामान्य व्यक्ति के लिए उनका पालन करना कठिन ही नहीं असंभव भी है; इसलिए आचार्य हरिभद्र सूरि ने उक्त व्रतों के पालन से पूर्व पूर्वसेवा का विधान प्रस्तुत किया है और अपने अन्य योग-ग्रन्थों में पृथक्-पृथक् नामों से उल्लिखित कर उसकी आवश्यकता पर बल दिया है। उक्त पूर्वसेवा पतंजलि के यम-नियम से सादृश्य रखती है। यही कारण है कि आचार्य हरिभद्र ने पतंजलि के योगांगों पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर उनकी तुलना योग-दृष्टियों से की है।

आचार्य हरिभद्र ने प्राथमिक योग्यता के रूप में जो पूर्वसेवा की कल्पना की है वह बहुत मार्मिक है। पूर्वसेवा में किसी एक देव विशेष का नामोल्लेख न करके सभी देवों के प्रति समभाव रखने का उपदेश देकर[१४] आचार्य हरिभद्र ने साम्प्रदायिकवाद से ऊपर उठने का प्रयास किया है। योग-मार्ग में गुरु के निर्देशन की आवश्यकता अनुभव करते हुए उन्होंने केवल धर्मगुरु को गुरु न मानकर सभी वृद्धजनों के प्रति गुरुभाव रखने को कहा है। वृद्धजनों में माता-पिता, शिक्षक, कला-शिक्षक, उसके सम्बन्धियों एवं सभी वृद्धजनों का परिगणन किया है[१५]। साधक में त्याग की भावना उत्पन्न करने हेतु आचार्य हरिभद्र ने दान को महत्ता प्रदान की है परन्तु पुण्य-लोभ के वशीभूत होकर बिना सोचे-विचारे दान देने को अनुपयुक्त बताया है तथा साधक को अपने आश्रित जनों के प्रति किये जाने वाले कर्तव्य का स्मरण कराया है[१६]। व्रतों के सम्बन्ध में जैनेतर परम्परा में प्रचलित कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रतों[१७] का उल्लेख कर आचार्य हरिभद्र ने सम्यग्दर्शन की संकीर्ण परिभाषा से ऊपर उठने का प्रयास किया है। संभवतः उनका यह अभिमत रहा होगा कि यदि जैन दृष्टि से अणुव्रत व महाव्रत का पालन करने वाले को योग सधता है तो कृच्छ्र-चान्द्रायणादि का पालन करने वाला व्रती क्यों नहीं हो सकता? इस प्रकार आचार्य हरिभद्र की पूर्वसेवा के अन्तर्गत किया गया उक्त

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विवेचन वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण है और हरिभद्र का अपना मौलिक चिन्तन है।

साधनाक्रम में क्रमिक प्रगति व आपेक्षिक तरतमता के आधार पर आचार्य हरिभग ने अपुनर्बन्धक, सम्यग्दृष्टि और चारित्री के भेद से योग अधिकारियों का विभाजन भी किया है[९८] जो पातंजल योग के अधम, मध्यम और उत्तम इन तीन श्रेणी के अधिकारियों[९९] के अनुरूप है जबकि इनके लक्षण एवं स्वरूप वर्णन में जैन परम्परा की मौलिकता सुरक्षित है[१००]। हरिभद्र के योग ग्रन्थों में सम्यग्दृष्टि की तुलना बौद्ध परम्परा के बोधिसत्व से करके साम्य दर्शाने का प्रयास भी हुआ है[१०१]। जैन तीर्थंकरों की तुलना बोधिसत्व से करते हुए तीर्थंकर, गणधर और केवली आत्मा की विविध स्थितियों का ज्ञान भी कराया गया है[१०२]।

अधिकारी भेद से किया गया योगियों का चतुर्विध विभाजन[१०३] भी बहुत महत्वपूर्ण है। पतंजलि के योगसूत्र में चतुर्विध योगियों का वर्णन मिलता है[१०४]। परन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आचार्य हरिभद्र ने योगियों की परिभाषा की जो संघटना की है वह बिल्कुल नवीन है। उन्होंने केवल कुल योगी एवं प्रवृत्त चक्र योगी को ही योग का अधिकारी माना है। गोत्रयोगी एवं निष्पन्नयोगी को नहीं[१०५]। कुल योगी भवप्रत्यय की हरिभद्रीय अवधारण पर पातंजल योग सम्मत योगी की अवधारणा का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है क्योंकि दोनों में पूर्वजन्म के संस्कारवश योग साधना का अभ्यास करने की योग्यता होती है[१०६]।

(अ) योग सम्बन्धी अनुष्ठान :—

प्रत्येक अधिकारी को अपने अनुष्ठान की कोट (श्रेणी) समझाने के लिए हरिभद्र ने विष, गर, अनुष्ठान, तद्धेतु तथा अमृत, इन ५ प्रकार के अनुष्ठानों का वर्णन किया है[१०७] और कहा है कि एक ही अनुष्ठान अधिकारी-भेद से उसी प्रकार भिन्न-भिन्न फल प्रदान करता है, जिस प्रकार एक ही पदार्थ रोगी एवं

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्वस्थ व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न रूप से परिणत होता है ।

जैन परम्परा में मुनि व गृहस्थ दोनों के लिए पृथक् धर्म (अनगार धर्म सागार धर्म) स्वीकृत किया गया है। जहाँ गृहस्थ व्रतों का आंशिक व स्थूल पालन करता है वहाँ मुनि पूर्णतः सूक्ष्म दृष्टि से पालन करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किये गये उक्त आगमिक विभाजन का आचार्य हरिभद्र ने समर्थन किया है। उन्होंने गृहस्थ को सद्धर्म के पालन में बाधा उपस्थित न हो इस बात का ध्यान रखते हुए आजीविका चलाने तथा निर्दोष दान देने, वीतराग पूजा, विधिपूर्वक भोजन, संध्याकालीन उपासना आदि करने का उपदेश दिया है। इसके अतिरिक्त जैन परम्परा में प्रचलित प्रतिक्रमण आदि आवश्यक कर्म, चैत्यवन्दन, धर्म-श्रवण और साधुजन के संयम में उपकारक उचित सेवा रूप क्रियायोग का भी उपदेश दिया है[१०९]। व्रतों के सम्बन्ध में उन्होंने मैत्री आदि भावनाओं पर अधिक जोर दिया है[११०]। इस प्रकार आचार्य हरिभद्र ने निवृत्ति और प्रवृत्ति धर्म का लोकोपकारी समन्वित रूप प्रस्तुत किया है। सर्वविरति साधु के लिए उन्होंने जिन आचारों का परिगणन किया है वे इस प्रकार है—गुरु के अधीन रहकर गुरुकुल में निवास करना, यथोचित् विनय-धर्म का पालन करना, नियत काल में अपने स्थान के परिमार्जन आदि में प्रयत्नशील रहना, अपना बल छिपाए बिना सभी कार्यो में शान्तिपूर्वक प्रवृत्ति करना, गुरु के वचनों के पालन में ही अपना कल्याण समझना, निर्दोष भाव से संयम का पालन करना, विशुद्ध भिक्षावृत्ति से जीवन-निर्वाह करना, शास्त्रविधि के अनुसार स्वाध्याय करना तथा मृत्यु जैसे संकटों का सामना करने में समद्युत रहना आदि[१११]।

यही नहीं, आचार्य हरिभद्र ने अभिनव साधक के आचरण करने योग्य विधि का निरूपण भी किया है। उनका मत है कि अभिनव साधक को पहले श्रुतपाठ, गुरुसेवा, आगम-आज्ञा जैसे स्थूल साधनों के अभ्यास में रत रहना चाहिए। शास्त्र के अर्थ का अवबोध हो जाने पर साधक को राग-द्वेषादि आन्तरिक दोषों को दूर करने के लिए सूक्ष्मता पूर्वक आत्म अवलोकन (निरीक्षण) करना चाहिए[११२]। इसके अतिरिक्त उन्होंने चित्त में स्थिरता लाने हेतु साधक को रागादि दोषों के

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विषय [113] एवं परिणामों का चिन्तन करने की विधि भी बताई है [114]।

आचार्य हरिभद्र द्वारा योग सम्बन्धी अनुष्ठानों का जिस विस्तार से निरूपण किया गया है वैसा पूर्ववर्ती ग्रन्थों में कहीं भी दिखाई नहीं देता। उक्त सभी अनुष्ठान किसी सम्प्रदाय-धर्म विशेष से बंधे हुए प्रतीत नहीं होते।

(ई) आहार

योगाभ्यासी को योग साधनों के अभ्यास के साथ-२ आहार पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि जैसा अन्न वैसा मन की उक्ति चरितार्थ है। आहार का मन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए आचार्य हरिभद्र ने आहार की चर्चा के सम्बन्ध में सर्वसंपत्करी भिक्षा का विधान किया है [115]। आचार्य ने भिक्षा की तुलना, व्रणलेप से की है। इसी प्रकार भिक्षा को परिमित मात्रा में ग्रहण करने की आवश्यकता पर भी बल दिया है [116] जो कि "हठयोग" के सिद्धान्तों से साम्य रखता है [117]।

(उ) कालज्ञान के उपाय :—

शास्त्रों में शारीरिक अंगों के स्फुरण तथा शकुन आदि के आधार पर मृत्यु काल के सन्दर्भ में पर्याप्त चिन्तन हुआ है क्योंकि विशेष लक्षणों के द्वारा मृत्यु काल ज्ञात हो जाने पर चित्त को समाहित करने में सहायता मिलती है और साधक का जीवन आंतरिक शुद्धि की ओर प्रवृत्त होता है। इसलिए आचार्य हरिभद्र ने कालज्ञान के उपायों का भी उल्लेख किया है यथाआगम, देवी-संकेत, प्रतिभा आभास, स्वप्न आदि [118]।

(ऊ) दार्शनिक तत्वों का विवेचन :—

योग और दर्शन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दार्शनिक सिद्धान्तों पर ही आध्यात्मिक साधना प्रतिष्ठित होती है इसलिए आचार्य हरिभद्र ने यत्रतत्र विविध

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दार्शनिकविषयों-जीव का स्वरूप, भाग्य और पुरुषार्थ का सम्बन्ध, कर्मवाद, जीव और कर्म का संयोग, कर्मबन्ध, मोक्ष, सर्वज्ञ आदि का निरूपण भी किया है।

आचार्य हरिभद्र की यह विशेषता रही है कि उन्होंने वैदिक परम्परा के ग्रन्थों के उन उल्लेखों का जो जैन परम्परा से पूर्णतः विरुद्ध नहीं हैं, ग्रहण करने का प्रयास किया है। महाभारत, मनुस्मृति, गीता आदि ग्रन्थों का प्रर्याप्त प्रभाव उनके ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने यत्र-तत्र अपनी तटस्थता तथा दुराग्रहहीनता का भी परिचय दिया है[११९]।

हठयोग में मादक पेय आदि के उपयोग की जो प्रवृत्ति प्रविष्ट हो गई थी उसे आचार्य हरिभद्र ने न तो अपने ग्रन्थों में सम्मान दिया है और न ही मन को निष्क्रिय करने की हठयोगी विचाधारा को प्रोत्साहन दिया है। सक्षेप में उन्होंने जैन योग साधना का व्यावहारिक धरातल पर खरा उतरने वाला स्वरूप उपस्थापित किया है[१२०]।

(ए) अन्य योगियों से परिचय :—

आचार्य हरिभद्र ने योग विषयों की चर्चा करते समय अनेक योगियों एवं योग पर लिखे लेखों का नामोल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य हरिभद्र सूरि उनसे भली भाँति परिचित थे। उन्होंने गोपेन्द्र[१२१] एवं कालातीत[१२२] नामक आचार्यों का नामोल्लेख करते हुए उनके वचनों को उद्धृत कर अपने मत के साथ तुलना भी की है और साम्य दर्शाने का प्रयास भी किया है। गोपेन्द्र तो सांख्याचार्य प्रतीत होते हैं जबकि कालातीत के विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अतीत शब्द के आधार पर पं० सुखलाल संघवी का यह अनुमान उचित प्रतीत होता है कि कालातीत शैव, पशुपत अथवा अवधूत जैसी किसी परम्परा के आचार्य होंगे[१२३]।

(ऐ) अन्य दर्शनों का प्रभाव :—

आचार्य हरिभद्र पर अन्य दर्शनों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उन्होंने जैन परम्परा में प्रचलित अनेक शब्दों की जैनेतर परम्परा में प्रचलित शब्दों के साथ तुलना करके साम्य प्रदर्शित किया है। उदाहरणार्थ १४वां गुणस्थान पातंजल योग सूत्र की धर्ममेघ समाधि के समान है जो अन्य सम्प्रदायों में अमृतात्मा, भवशत्रु, शिवोदय, सत्तवानन्द या अपर नाम से अभिहित की गई है[१२४]। इसी प्रकार सत्प्रवृत्ति रूप असंगानुष्ठान अन्य दर्शनों में प्रशान्तवाहिता (सांख्य), विसभाग परिक्षय (बौद्ध), तथा शिववर्त्म (शैव) योग तथा अन्यत्र ध्रुवमार्ग के नाम से आख्यात है[१२५]। मुक्तावस्था को वेदान्त में परमानंद बौद्धों में निर्वाणतदीय, अन्य दर्शनों में दु:खान्त तथा न्यायवैशेषिक में विशेष गुण-व्यवच्छेद की स्थिति कहा गया है[१२६]।

(ओ) पश्चात्वर्ती आचार्यों पर प्रभाव :—

आचार्य हरिभद्र के ग्रन्थों का पश्चात्वर्ती अन्य आचार्यों पर काफी प्रभाव-पड़ा। आचार्य शुभचन्द्र, आचार्य हेमचन्द्र एवं उपा० यशोविजय प्रभृति विद्वानों ने आचार्य हरिभद्र का अनुसरण कर जैन योग को विविध रूपों में पल्लवित और पुष्पित किया। आचार्य यशोविजय ने तो अपने ग्रन्थों में हरिभद्र के मन्तव्यों का ही स्पष्टीकरण किया है। यही नहीं उन्होंने हरिभद्र के योगविंशिका एवं षोडशक पर टीका भी लिखी। आचार्य हरिभद्र और उपाध्याय यशोविजय के ग्रन्थों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार पतंजलि के योगसूत्र के गूढार्थों को स्पष्ट करने हेतु व्यास ने भाष्य की रचना की थी, उसी प्रकार आचार्य हरिभद्र के ग्रन्थों के गहन अर्थों को समझाने हेतु उपाध्याय यशोविजय ने विभिन्न अध्यात्म एवं योगपरक ग्रन्थों की रचना की। अत: यदि यशोविजय को हरिभद्र के व्याख्याकार के रूप में स्वीकार कर लिया जाए तो अनुचित न होगा।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि आचार्य हरिभद्र ही एक ऐसे आचार्य हैं जिनके योग विषयक ग्रन्थों में ऐसी ऐतिहासिक व तुलनात्मक सामग्री मिलती है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। इससे उनकी बहुश्रुतता, माध्यस्थवृत्ति, असाम्प्रदायिक वृत्ति तथा समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। उन्होंने सर्वतोमुखी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रतिभा द्वारा जैन परम्परा में योग साहित्य की रचना कर केवल जैन मतावलम्बियों को ही अभिनव दिशा प्रदान नहीं की अपितु किसी भी परम्परा के साधक द्वारा मान्य लोक परम्परा के अनुकूल योगसाधना मार्ग का विविध दृष्टियों से निरूपण कर सबके लिए योग का प्रवेश द्वार खोल दिया है।

पाद–टिप्पण

1. Sir. J. Marshall, Mohav Jodiro and the Indus Civilization, Vol. 1, P. 53.
२. ऋग्वेद १-३४-६, २-८-१ ३-१८-५, १०-२१६-५, १-१८-७, १-५-३।
३. तैतिरीयोपनिषद् २-४, कठोपनिषद् १-६-११, १-२-१२, श्वेताम्यतरोपनिषद् ६-१३ छान्दोग्योपनिषद् ७-६-१, ७-६-२, ७-७-१, अमृतनादोपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद् ४१, मैत्रायणी उपनिषद् ६-१८।
४. द्रष्टव्य—महाभारत अनुशासनपर्व, शान्ति पर्व एवं भीष्म पर्व।
५. गीता २-४८, ५०, ३-३, १२-५२, १३-२४, १४-२६।
६. द्रष्टव्य—योगवासिष्ठ-वैराग्य, मुमुक्षु व्यवहार, उत्पत्ति, स्थिति, उपासना और निर्वाण अध्याय।
७. न्यायसूत्र (गौतम) १-१, ४-२-३८, ४-२-४२, ४-२-४६।
८. वैशेषिक सूत्र (कणाद) १-१-४, ६-२-२, ६-२-८।
९. सांख्य सूत्र (कपिल) १-१, ३-३०, ३-३१-३३।
१०. योगसूत्र (पतंजलि)।
११. योग बिन्दु।
१२. कहावली, पत्र संख्या ३००, चतुर्विंशति प्रबन्ध, पृ० ४९,५०, पुरातन प्रबन्ध संग्रह पृ० १०३।
१३. चतुर्विंशति प्रबन्ध, पृ० ४९-५०, प्रभावक चरित पृ० ६३-६४, पुरातन प्रबन्ध संग्रह पृ० १०४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

14. The History and culture of the Indian People Vol IV
15. The culture Heritage of Indian Vol IV, P.P. 50-53,
१६. सम्बोध प्रकरण, गुरुस्वरूपाधिकार के अन्तर्गत कुगुरु स्वरूप ।
१७. स्थानांग सूत्र ३-१-१२४, तत्वार्थ सूत्र ६/१ ।
१८. द्रष्टव्य-जैनयोग ग्रन्थ चतुष्टय में प्रकाशित उपाध्याय अमरमुनि का लेख "जैन योग एक परिशीलन" पृ० ६७ ।
१९. युजिर योगे–सिद्धान्त कौमुदी, धातु क्रम संख्या १४४४ ।
२०. युज् समाधौ, सिद्धान्त कौमुदी, धातु क्रम संख्या ११७७ ।
२१. क—पा० यो० सू० १/४६, ५१
ख—व्यास भाष्य पृ० ६ ।
२२ योग बिन्दु ३,३१,२०१, योग दृष्टिसमुच्चय[११], योगशतक[२], योगविंशिका[१]
२३. पातंजल योग सूत्र २/२४ ।
२४. योगी याज्ञवल्क्य स्मृति १/४४ ।
२५. योगशिखोपनिषद् १/२८ ।
२६. स्थानागं सूत्र ३/१/१२४, तत्वार्थ सूत्र ६/१
२७. तत्वार्थ सूत्र ६/१
२८. आदि पुराण २१/१२ सर्वार्थसिद्धि ६/१२/६३२, पद्मनन्दि पंच विंशतिका ४/६, स्थानांग सूत्र, स्थान १०, सूत्रकृतांग सूक्र १/४, १/१६, भगवती सूत्र १८-१०-४, उत्तराध्ययन सूत्र २७/२ ।
२९. उत्तराध्ययन सूत्र २८/३, द्वादशानुप्रेक्षा, ७७५, आचारांग सूत्र, अध्ययन ६, औपपातिक सूत्र तपोधिकार अध्ययन ३० ।
३०. स्थानांग सूत्र स्थान १०, सूत्रकृतांग १/८/४२६, भगवती सूत्र १८/१०/६, आवश्यक निर्युक्ति, कायोत्सर्ग अध्ययन, आदि पुराण २८/१७६ ।
३१. योगविंशिका, ।
३२. योगशतक २५ ।
३३. पातञ्जल योग सूत्र १/२
३४. धम्मपद् १४/५

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

३५. योगशतक २-४

३६. योगदृष्टि समुच्चय ११ ।

३७. द्र०—पातञ्जल योग सूत्र १/१ पर मणिप्रभा-योगसुधाकर एवं योग चन्द्रिका नामक वृत्ति तथा १/२ पर भावागणेश एवं नागेशभट्ट वृत्ति ।

३८. भोजवृत्ति पृ० १ ।

३९. मणि प्रभाख्या १/१ ।

४०. यो० वा०, पृ० ५१ ।

४१. भोजवृत्ति, १/१७ ।

४२. पा० यो० सू० १/१७ ।

४३. व्यास भाष्य, १/१७ ।

४४. पा० यो० सू० १/४६ ।

४५. पा० यो० सू० १/१ पर व्यास भाष्य ।

४६. पा० यो० सू० १/१८ ।

४७. वही, १/१९ ।

४८. तत्ववैशारदी, १/१९ ।

४९. पा० यो० सू० १/१९ एवं तत्ववैशारदी टीका ४ भोजवृत्ति ।

५०. पा० यो० सू० १/२० ।

५१. योगशतक गाथा, २ एवं वृत्ति ।

५२. योगदृष्टिसमुच्चय, गा० २ ।

५३. योगबिन्दु ३१; ३५७ ।

५४. योगविंशिका १-२ ।

५५. षोडशक १३/१४ ।

५६. योगविंशिका ४, ७ षोडशक १०/१० ।

५७. योग विंशिका, २

५८. योग बिन्दु ३५७, योग विंशिका ३ ।

५९. योग विंशिका गा० १९, २० एवं उन पर यशोविजय कृत टीका ।

६०. योग बिन्दु ४१९ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

६१. वही, ४२१ ।

६२. पा० यो० सू० १/१८ पर यशोविजय वृत्ति ।

६३. योगविंशिका २ पर यशोविजय वृत्ति ।

६४. पा० यो० सू० १/४६ ।

६५ योग विंशिका २ पर यशोविजय वृत्ति ।

६६. वही

६७. पा० यो० सू० १/२८ पर भोजवृत्ति ।

६८. योगविंशिका मा० २ एवं १९ तथा यशोविजय वृत्ति ।

६९. पा० यो० सू० ३/२ ।

७०. योग विंशिका मा० २ व १९ तथा यशोविजय वृत्ति ।

७१. पा० यो० सू० ३/३ ।

७२. पा० यो० सू० १/१ पर व्यास भाष्य ।

७३. प्राकृत पंच संग्रह १/३, षट्खंडागम १-१-९ द्रव्यसंग्रह टीका १३, गोम्मटसार जीवकाण्ड ९, मूलाराधना १/१५, तत्वार्थराजवार्तिक ९-१-११/५८८ गुणस्थान क्रमारोह७.

७४. मोक्षपाहुड ४, समाधिशतक ४, द्रव्यसंग्रह टीका १४/४६, परमात्म प्रकाश १/११ ज्ञानसार २९, कार्तिकयानुप्रेक्षा १९२, योगशास्त्र १२/७, अध्यात्म-सार ७/२०/२०-२१, द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका (यशो०) २०/१७, १८, अध्यात्ममतपरीक्षा १२५ पर स्वो० पृ० ।

७५ भावपाहुड़ ७६, प्रवचनसार २/६३ ज्ञानार्णव ३/२८ ।

७६. योगदृष्टि समुच्चय मा० ।

७७, वही १७ ।

७८. पं० मालवणिया, दलसुख, डा० के०के० दीक्षित द्वारा संपादित एवं अनुवादित "योग दृष्टि समुच्चय एवं योगविंशिका" की अंग्रेजी प्रस्तावना पृ० १

७९. अध्यात्म प्रवेशिका पृ० १४२ ।

८०. योगदृष्टि समुच्चय १४; तुलना-अभिधम्म कोश भाष्य १/४४ ।

८१. पा० यो० सू० २/३,४ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

८२. पं० मालवाणिया दलसुख, डा० के०के० दीक्षित द्वारा संपादीत एवं अनुवादित "योग दृष्टि समुच्चय एवं योग विंशिका" की अंग्रेजी प्रस्तावना पृ० १ ।

८३. योगदृष्टि समुच्चय १२, १३ ।

८४. वही १६, ६७ ।

८५. वही, मा० १६, एवं स्वो० पृ० ।

८६. वही गा० १५ ।

८७. अभिधम्म कोष १/४४ एवं भाष्य ।

८८. द्रष्टव्य-योगदृष्टिसमुच्चय एवं योग विंशिका की प्रस्तावना पृ० १

८९. योग बिन्दु १०६-१४९ ।

९०. योग दृष्टि समुच्चय २२, २३, २७, २८ ।

९१. योगशतक २५, २६ ।

९२. योगदृष्टि समुच्चय २१ ।

९३. योग बिन्दु ११६ ।

९४. योग बिन्दु १२० ।

९५. वही १३१ ।

९६. वही १३१ ।

९७. योग बिन्दु ७२, योग दृष्टि समुच्चय २४, योगशतक ९, २५, २७, २८, २९

९८. पा० यो० सू० २/१ पर नागोजी भट्ट वृत्ति।

९९. योग शतक, २५, २७-२९, योगबिन्दु १७७, १७८, २५१, २५३ ।

१००. योग बिन्दु २७०-२७४ ।

१०१. वही २८४-२८८ ।

१०२. योग दृष्टि समुच्चय २०९ ।

१०३. पा० यो० सू० ३/४७ पर व्यास भाष्य ।

१०४. योगदृष्टि समुच्चय २१० ।

१०५. तुलना-पा० यो० सू० १/१६ ।

१०६. योग बिन्दु १५३, १५४, १५५ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१०७. योग शतक ३० ।

१०८. वही ३१ ।

१०९. वही ३४, ३५ ।

११०. वही ।

१११. वही ५१, ५२ ।

११२. ,, ५७, ६० ।

११३. ,, ७८, ७९ ।

११४. ,, ८१, ८२ ।

११५. तुलना-हठयोग प्रदीपिका, १/६० ६५ घेरण्ड संहिता ५/१५, २२ ।

११६. योगशतक ६८ ।

११७. लोकतत्व निर्णय ३८ ।

११८. संघवी सुखलाल, समदर्शी आचार्य हरिभद्र पृ० ८४ ।

११९. योग दृष्टि समुच्चय, गा० १६ पर स्वो० वृ०, योगबिन्दु, २००, ३०० ।

१२०. वही १००, १०१ ।

१२१. वही ३०० ।

१२२. समदर्शी आचार्य हरिभद्र पृ० ८२ ।

१२३. योग बिन्दु ४२२ ।

१२४. यो० दृ० समु० १७६ ।

१२५. षोडशक प्रकरण १६/१४ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आचार्य हरिभद्र द्वारा उल्लिखित बिहार के कुछ महत्वपूर्ण स्थान

—प्रो० डॉ० राजाराम जैन

आचार्य हरिभद्र कृत "समराइच्च कहा" प्राच्यभारतीय वाङ्मय की एक अनूठी रचना है। अपने तलस्पर्शी अध्ययनों के पश्चात् देश-विदेश के अनेक प्राच्यविद्याविदों ने उसे ज्ञान-विज्ञान का अद्भुत विश्व-कोष माना है। उसमें मानव जीवन के विविध-पक्षों को प्रकाशित करने में प्रतिभामूर्त्ति हरिभद्र ने अपनी कुशल एवं मौलिक प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है। इन सभी पक्षों का एक साथ संग्रह एवं उसका विश्लेषण यहाँ सम्भव नहीं। प्रस्तुत लघु निबन्ध का उद्देश्य तो केवल यही है कि औपन्यासिक शैली में रचित उक्त लोकप्रिय रचना—समराइच्च-कहा में तीर्थंकरों एवं जैन-विद्या की महान् ऐतिहासिक पुण्यभूमि—बिहार को कितना स्मरण किया गया है ?

यह कहना तो कठिन ही है कि हरिभद्र ने कभी बिहार की यात्रा की

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

होगी क्योंकि उनके साहित्य में इस प्रकार का कोई भी स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। लगभग १४४४ ग्रन्थों के लेखक एवं टीकाकार से यह आशा भी नहीं की जा सकती है कि वह लम्बी यात्राओं में अभिरुचि रखता रहा हो। जो लेखक साधु के कठोर नियमों का पालन करते हुए तथा रात्रि में दीपक जलवाने के हिंसा-दोष से बचते हुए, एक साधुभक्त श्रावक (लल्लिग) के द्वारा अध्ययन-कक्ष में प्रस्थापित हीरे के प्रकाश में एकरस होकर रात्रि-दिवस निरन्तर ही साहित्यरचना करता रहा हो, उसे यात्रा के लिए, विशेष रूप से दूर देश की यात्रा के लिए समय हीकहाँ से मिल पाता ?

यह सही है कि " समराइच्च कहा " भूगोल का ग्रन्थ नहीं है। फिरभी हरिभद्र ने उसके अनेक कथा-प्रसंगों में बिहार के तत्कालीन प्रसिद्ध कुछ प्रमुख स्थलों के उल्लेख किए हैं, जिनमें क्षितिप्रतिष्ठितपुर,बसन्तपुर विशाखवर्धन,पाटलिपुत्र,कुसुमपुर, मिथिला, कोल्लाग सन्निवेश, चम्पा एवं महासर नामक नगर प्रमुख हैं। अटवियों में उन्होंने कादम्बरी नामकी एक अटवी की चर्चा की है। इन स्थलों की जानकारी के लिए लेखक के सम्मुख पूर्ववर्ती अनेक साहित्यिक परम्पराएँ एवं अनुश्रुतियाँ तो थीं ही, साथ में बिहार भूमि के प्रति उनके मन में श्रद्धासमन्वित सुकोमल भावनाएँ भी। इन सन्दर्भित स्थलों की वर्तमान सन्दर्भों में अवस्थिति, उनके इतिहास एवं महत्व पर यहाँ संक्षेप में प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है :—

क्षितिप्रतिष्ठितनगर :—

" समराइच्चकहा " का प्रारम्भ क्षितिप्रतिष्ठितनगर के राजकुमार गुणसेन एवं पुरोहितपुत्र अग्निशर्मा के जीवन-वृत्त से होता है। इस नगर का वर्णन करते हुए लेखक ने उसके त्रिकों, चतुष्कों तथा चत्वरों से युक्त नगर-संरचना का सुन्दर वर्णन किया है एवं वहाँ के निवासियों की विविध सांस्कृतिक अभिरुचियों की चर्चा की है। इतिहासकारों ने इसे राजगृही का अपरनाम बताया है। आवश्यक निर्युक्ति एवं चूर्णी के अनुसार पूर्वकाल में भी इस नगर का नाम क्षितिप्रतिष्ठितपुर था। पृथिवीमण्डल पर ख्यातिप्राप्त होने के कारण ही सम्भवतः उसका यह नाम पड़ा होगा किन्तु

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

राजनैतिक एवं भौगोलिक कारणों से समय-समय पर इसके नामों में परिवर्तन होते रहे। कुछ अनुश्रुतियों के अनुसार उसके राजा जितशत्रु ने उसे क्षीणवास्तुक समझ-कर वास्तुशास्त्रविद् विद्वानों की सम्मति से एक नवीन स्थल की खोज कराई तथा चनों की अधिक पैदावार के कारण "चणकपुर" नाम से नवीन नगर बसाया। आगे चलकर पुन: कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगीं, अतः किसी राजा ने उक्त स्थान बदलकर कुश-दर्भ बहुल प्रदेश पर "कुशाग्रपुर" नामक नवीन नगर बनवाया किन्तु वहाँ समय-समय अग्निकाण्ड होने के कारण राजा प्रसेनजित ने स्थान-परिवर्त्तन कर "राजगृही" के नामसे पुनः नगर नवीन की रचना कराई।

राजा प्रजेनजित के बाद श्रेणिक राजगृही की गद्दी पर बैठा। उसने राजगृही की श्री-समृद्धि एवं प्रष्ठिा की पर्याप्त अभिवृद्धि की।

श्रेणिक की मृत्यु के पश्चात् राजगृही श्री विहीन हो गई।

राजगृही का सम्बन्ध अनेक महापुरुषों से रहा है। तीर्थंकर मुनिसुव्रत का जन्म यहीं हुआ था। तीर्थंकर महावीर का प्रथम समवशरण यहीं आया तथा इन्द्रभूति गौतम मेतार्य, जम्बू स्वामी, मेघकुमार, शालिभद्र, अभयकुमार, नन्दिषेण, विशखनन्दि, शय्यंभवसूरि प्रभृति महापुरुषों का राजगृही से सीधा सम्बन्ध रहा है। यह भी उल्लेख मिलता है कि तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती भरत के महामन्त्री श्रीदल के सन्तानीय, जो कि महत्तियाण गोत्र के जैन श्रावक थे. यहाँ प्राचीनकाल से ही निवास करते रहे। किन्हीं अज्ञात कारणों से उनका धर्म परि-वर्त्तन हो गया किन्तु उनका गोत्र सुरक्षित रह गया और आज भी वह बिहार में महथा, मेहता अथवा महेता के नाम से जाना जाता है। बिहार सरकार ने उनकी गणना अनुसूचित जातियों में की है।

दो विदेशियों का सम्बन्ध भी राजगृही के साथ बतलाया जाता है। ईरान का राजकुमार आर्द्रक, जो राजगृही में आकर भ० महावीर का प्रवचन सुनकर जैन धर्मानुयायी बन गया तथा जिसने ईरान देश में कलन्दर सम्प्रदाय चलाया, जो शुद्ध अहिंसावादी है। दूसरा विदेशी था, ईसा मसीह जो अपने जीवन के प्रारम्भिककाल

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में माता-पिता से रूस कर इज़राइल से भारत आया तथा राजगृही में अन्य धर्मों के साथ जैन धर्म का अध्ययन कर अपने देश में लौटा। जब उसने वहाँ अपने नवीन धर्म का प्रचार करना चाहा तभी उन्हें शूली की सजा दे दी गई।

इस प्रकार आगम एवं आगमेतर जैन साहित्य में राजगृही का विस्तृत रोचक वर्णन मिलता है। अधिकांश साहित्य एवं कुछ श्रुतिश्रुतियाँ हरिभद्र के सम्मुख थीं, उनमें राजगृही की गरिमा देखकर उन्हें उसका क्षितिप्रतिष्ठित नाम ही सर्वाधिक सार्थक एवं महिमा मण्डित प्रतीत हुआ होगा, इसी कारण उन्होंने राजगृही के क्षितिप्रतिष्ठित नाम को अपनी कृति में स्थान दिया।

वसन्तपुर :--

आचार्य हरिभद्र ने वसन्तपुर का उल्लेख करते हुए बतलाया है कि वहाँ सुपरितोष नामक एक सुन्दर तपोवन था जिसमें अनेक तापस निराकुल होकर तपस्या किया करते थे। पुरोहितपुत्र अग्निशर्मा राजकुमार गुणसेन से अपमानित होकर एवं दुखी हृदय से तापस की दीक्षा लेकर यहाँ जीवन व्यतीत करने लगा था।

उक्त नगर की अवस्थिति का ठीक पता नहीं चलता। हरिभद्र ने लिखा है कि राजा गुणसेन वसन्तपुर से जब क्षितिप्रतिष्ठितपुर लौटा तब उसे मार्ग में निरन्तर चलते हुए एक मास लग गया। सौन्दर्यप्रेमी एवं भ्रमणशील राजा गुणसेन की प्रतिदिन की गति यदि १५ कि० मी की मान लें तो क्षितिप्रतिष्ठ से वसन्तपुर लगभग ४५० कि० मी० दूर होना चाहिए।

हरिभद्र ने लिखा है कि उस तपोवन में बकुल, पुन्नाग, अशोक चम्पक एवं नाग आदि के वृक्ष थे तथा वहाँ मृग, सिंह आदि स्वभाव-विरूद्ध जानवर विचरण करते थे। वहाँ एक पहाड़ी नदी भी बहती थी। तपोवन के इस प्राचीन भूगोल का मेल वर्तमान कालीन हजारीबाग बाइबासा से बैठता है। उसी प्रदेश में दामोदर नदी भी बहती है यह प्रदेश आजकल भी अपनी गहन वन-सम्पदा के लिये प्रसिद्ध है। क्षितिप्रतिष्ठ अथवा राजगृही से इसकी दूरी भी अधिक है। अत: वसन्तपुर उसी प्रदेश में कहीं होना चाहिए।

लेखक ने वसन्तपुर के विमानच्छन्दक राजमहल को सर्वसुविधा सम्पन्न बतलाते हुए कहा है कि वह वर्षाऋतु के लीला-दृश्यों की शोभा से सम्पन्न था। गुणसेन ने वहाँ पर बल्ख, तुरूष्क एव वज्र जाति के घोड़ों की सवारी का आनन्द लिया था। भारत में इन तीनों जातियों के घोड़ों को प्रशंसनीय बतलाया गया

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है। आगम साहित्य की टीकाओं में भी इन घोड़ों की चर्चा मिलती है। इन्हें युद्ध के उद्देश्य से बल्ख, तुर्क एवं वज्र देशों से नकद अथवा वस्तु-विनिमय के आधार पर खरीदा जाता था।

प्रतीत होता है कि वसन्तपुर मगध की सीमान्त पर स्थित था। अतः वहाँ राजकीय भवन, अश्वशाला, आयुधशाला एवं सैन्यागार आदि भी रहा होगा। सीमान्त पार काशी एवं कोशल राज्यों की सीमाएँ स्थित थीं।

विशाखवर्धनपुर :—

पुरातत्ववेत्ताओं ने इसकी पहिचान वर्तमान बिहारशरीफ से की है। हरिभद्र ने समराइच्चकहा के सातवें भव की एक कथा में प्रस्तुत नगर का उल्लेख कर उसे कादम्बरी गुफा के समीप वर्णित किया है। इतिहासकार बुचानन ने एक स्थानीय जैन अनुश्रुति के आधार पर लिखा है कि इस नगर की स्थापना तीसरी-चौथी सदी में पद्मोदय नामक किसी राजा ने की थी। सन् १८२० में पुरातत्वविद् कर्नल फ्रेंकलिन ने भी इस स्थल की यात्रा की थी तथा उनके साथ रहने वाले एक जैन पण्डित ने उन्हें बताया था कि उस स्थल का प्राचीन नाम विशाखवर्धन अथवा विशाखपुर था क्योंकि उसका स्थापन। उग्रवंशी नरेश विशाख ने की थी। इस जैन पण्डित के अनुसार यह राजा विशाखराजगृही नरेश श्रेणिक का समकालीन था। वस्तुतः इन अनुश्रुतियों पर शोध-खोज की आवश्यकता है। राजगृही का समीपवर्ती प्रदेश होने के कारण प्रतीत होता है कि यहाँ श्रमणों के बिहार होते रहे होंगे इस कारण आगे चलकर उस विशाखवर्धनपुर का नाम बिहार पड़ गया। तत्पश्चात लगभग १६ वीं १७ वीं सदी में शाह शरीफुद्दीन नामक एक मुस्लिम सन्त के नाम पर उसका नाम बिहारशरीफ पड़ गया आज भी उसी नाम से प्रसिद्ध है।

चम्पा :--

वर्तमान भागलपुर के एक उपनगर—चम्पापुर से इसकी पहिचान की गई है। चम्पक वृक्षों की प्रचूरता के कारण ही इस नगर का उक्त नाम पड़ा। वर्तमान में भी इस प्रदेश में चम्पक वृक्षों की प्रचुरता है। इसका अपर नाम मालिनी भी मिलता है। जैन साहित्य में उसे वासुपूज्य स्वामी की निर्वाण भूमि के कारण सिद्धक्षेत्र की कोटि में प्रतिष्ठित किया गया है। व्यापारिक दृष्टि से भी उसे भारत के प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों में परिगणित किया गया है। हरिभद्र से उसे सार्थवाहों के गढ़ के रूप में चित्रित किया है तथा वहाँ के नन्द नामक एक सार्थवाह की चर्चा की है।

Ac. Gunratnasuri MS　　　　Jin Gun Aradhak Trust

कोटिभट्ट श्रीपाल चम्पा नरेश का ही पुत्र था जो उज्जयिनी होता हुआ भृगुकच्छ पहुँचा तथा वहाँ से हंसद्वीप एवं रत्नद्वीप पहुँचा था। स्थल मार्ग में इसका व्यापारिक सम्बन्ध मिथिला, अहिच्छत्रा, पिहुँड (चिकाकोल एवं कलिंग पट्टम) से था।

चम्पानगरी में माप तौल के प्रमाण सम्भवतः मगध देश से ग्रहण किए जाने के कारण वे "मागधप्रस्थक" के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके नाम एवं प्रमाण इस प्रकार हैं।—

२ असई (असति)	—	१ पसई (प्रसृति)	लगभग	३०० ग्राम
२ पसई	—	१ सेइया (सेतिका	,,	६०० ,,
४ सेइया	—	१ कुलओ (कुलव.)	,,	२ १/२ किलो
४ कुलओ	—	१ पत्थओ (प्रस्थकः)	,,	१० ,,
४ पत्थओ	—	१ आडय (आढकः)	,,	४० ,,
४ आडय	—	१ दोण (द्रोणः)	,,	१६० ,,

चम्पानगरी में देश विदेश के सार्थवाहों के कारण बड़ी चहल-पहल रहती थी। उववाइय सुत्त में इसका बड़ा ही सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन आया है। साधुजनों, साहित्यकारों एवं दार्शनिकों का तो वह गढ़ था ही, अटूट धन-सम्पदा के कारण वहाँ औत्कटिकों (रिश्वतखोरों अथवा दलालों) ग्रन्थि भेदकों (जेवकतरों) उचक्कों, तस्करों की भी कमी नहीं थी किन्तु प्रशासनिक कठोरता के कारण वहाँ अपराध कर्म हो नहीं पाते थे।

कुणिक की मृत्यु के बाद उसके पुत्र उदायी ने चम्पा को अपनी राजधानी बनाया था। विविध तीर्थ कल्प के अनुसार दशवैकालिकसूत्र की रचना इसी भूमि पर हुई थी। यहाँ के कुमारनन्दी नामक एक स्वर्णकुमार ने चन्दन की एक कलापूर्ण जीवन्त स्वामी (भगवान महावीर के दीक्षा-पूर्व की मूर्त्ति) की मूर्त्ति का निर्माण किया था। मगध की राजधानी जब पाटलिपुत्र को बनाया गया, तभी से उसकी अवनति प्रारम्भ हो गई।

मिथिला

समराइच्चकहा के ८ वें भव में मिथिला का उल्लेख हुआ है। उसकी एक कथा के प्रसंग में हरिभद्र ने बताया है कि मिथिला के एक मान्त्रिक ने मन्त्र शक्ति के प्रभाव से किस प्रकार वहाँ के राजा की पटरानी का अपहरण कर लिया था। मन्त्र-तन्त्र के ये चमत्कार मिथिला में आज भी देखें जा सकते हैं। विविधतीर्थ कल्प में

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जिनप्रभसूरि ने भी इसके कुछ यक्षों एवं देवियों के नामोल्लेख किए हैं। उन्होंने बताया है कि मिथिला के मल्लिनाथ चैत्य में संस्थापित वैरुट्टादेवी एवं कुबेरयक्ष तथा नमिचैत्य में स्थित गान्धारी देवी और भृकुटियक्ष अपनी शक्ति से निर्विण्ण साधकों पर आने वाले उपसर्गों से उनकी रक्षा किया करते थे।

महावीर के परिनिर्वाण के २२० वर्ष बाद अर्थात् ई० पू० ३०७ के पश्चात् मिथिला के लक्ष्मीगृह चैत्य में कौण्डिन्यगुप्त (आर्य महागिरि के शिष्य) आसमित्त ने अनुप्रवादपूर्व (नामक पूर्व-साहित्य) के "निपुणक" नामक वस्तु का अध्ययन किया था। उसी समय चतुर्थ निह्नव की स्थापना भी की गई थी।

जैन साहित्य में मिथिला का अपरनाम "जगइ" भी बतलाया गया है। यह नाम अन्यत्र नहीं मिलता।

जिनप्रभसूरि ने मिथिलावासियों के कदलीफल तथा दुग्धसिद्ध चिउड़े के प्रति आसक्ति की चर्चा की है, जो वहाँ पर आज भी देखने को मिलती है।

कोल्लाग सन्निवेश

कुछ विद्वानों ने इसे मगध जनपद का एक ग्राम बताया है किन्तु यह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। जैनागम साहित्य के अनुसार यह वैशाली का एक प्रधान उपनगर था। वर्तमान में यह स्थल कोल्हुआ ग्राम के नाम से जाना जाता है।

जैन प्रमाणों के अनुसार वर्धमान ने अपनी प्रवृज्या के बाद प्रथम पारणा कोल्लाग में ही की थी। यहाँ पर उपलब्ध जिस स्तम्भ को कुछ इतिहासकार अशोक स्तम्भ कहते हैं अन्य कुछ इतिहासकार उनसे सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि बौद्ध परम्परा में सिंह का महत्व नहीं है। वह तो महावीर का चिन्ह है अत वह स्तम्भ वैशाली पुत्र महावीर से सम्बन्धित है, जो उनके नाना चेटक ने वर्धमान की प्रवृज्या की स्मृति में खाण्डववन में बनवाया होगा। सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० इर्विन का भी कथन है कि सम्राट अशोक के केवल दो ही स्तम्भ हैं जो रुम्मनदेइ एवं निग्लीव में उपलब्ध हैं और उनपर सिंहशीर्ष नहीं हैं। इन्हे छोड़कर अशोक ने स्वयं ही अपने द्वारा अन्यत्र स्तम्भ निर्माण कराने की चर्चा नहीं की है।

जैन परम्परा में स्तम्भ का विशेष महत्व रहा है। कैवल्य प्राप्ति के बाद तीर्थंकरों के उपदेशों के लिए जो समवशरण की रचना होती है, उसके मुख्यद्वार पर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्तम्भ का निर्माण किया जाता है जो मानस्तम्भ के नामसे प्रसिद्ध है। महावीर का चिह्न सिंह हैं, अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सिंह मूर्त्ति प्राचीन स्तम्भ परवर्त्ती कालों में भ० महावीर की स्मृति में तो कहीं निर्मित नहीं किए गए थे, जिन पर बाद में अशोक ने अपने अभिलेख उत्कीर्ण करा दिए हों। इस विषय पर गम्भीर शोध-खोज की आवश्यकता है।

पाटलिपुत्र :-

वर्तमान में यह नगर पटना के नाम से प्रसिद्ध है। समराइच्चकहा में इसका उल्लेख चतुर्थ भव में हुआ है। यह संयोग की ही बात है कि इसके जितने भी प्राचीन नाम मिलते हैं वे सभी पुष्पवाची हैं—जैसे—पाटलिपुत्र, कुसुमपुर, पुष्पपुर एवं पुष्पभद्र।

जैन साहित्य में पाटलिपुत्र का महत्व अनेक दृष्टियों से है। यही वह पुण्य भूमि है, जहाँ प्रतापी सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) ने जैन दीक्षा ग्रहण की थी। यहीं पर जैनागमों के संकलन के लिए प्रथम संगीति हुई थी जो पाट-लिपुत्र-वाचना के नामसे प्रसिद्ध है। गीता बाइबिल, कुरान एवं गुरुग्रन्थ साहिब के समान ही महान जैनग्रन्थ तत्वार्थाधिगमसूत्र की रचना भी उमास्वाति वाचक ने इसी पुण्यभूमि पर बैठकर की थी। यहीं पर राजा नन्द के महामन्त्री शकटाल के पुत्र स्थूलिभद्र ने जैनाचार्य की दीक्षा लेने के बाद सुप्रसिद्ध मगधसुन्दरी कोशा-गणिका की रग-विरंगी चित्रशाला में वर्षावास किया था और अपनी चारित्रिक हठता से प्रभावित कर उसे श्राविका-व्रत प्रदान कर सभी को आश्चर्य चकित कर दिया था। कमलदह (गुलजारबाग स्टेशन के समीप) क्षेत्र का एक भग्न खण्डहर आज भी उस घटना की स्मरण करा देता है।

पाटलिपुत्र की स्थापना कुणिक (अजातशत्रु) के पुत्र उदायि ने महावीर परिनिर्वाण के ६० वर्ष पश्चात् अर्थात ई० पू० ४६७ में की थी। विविधतीर्थंकल्प के अनुसार राजा श्रेणिक के स्वर्गवास के बाद शोकाकुल कुणिक ने जिस प्रकार राजग्रही छोड़कर चम्पा को राजधानी बनाया उसी प्रकार कुणिक पुत्र उदायि ने भी पिता की मृत्यु के बाद शोकाकुल हो कर चम्पा को छोड़ दिया तथा गंगा किनारे स्थित सुन्दर एवं पाटलिपुष्पों की सुगन्धि वाले प्रदेश को मगध की राजधानी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बनाया और पाटलिपुष्पों की प्रचुरता के कारण उसका नाम पाटलिपुत्र रखा। दुर्भाग्य से कुछ ही दिनों के बाद किसी ने उसकी हत्या कर डाली अतः उसकी नापित मणिका का नन्द नाम का पुत्र मगध का राजा बन गया। नौवें नन्द का मंत्री शकराल था जिसके पुत्र स्थूलिभद्र की ऊपर चर्चा की जा चुकी है।

जिनप्रभसूरि ने पाटलिपुत्र का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि पाटलिपुत्र में ७२ कलाओं की शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध था। यन्त्र, तन्त्र एवं मन्त्र विद्याओं रसवाद, धातुवाद निधिवाद, अंजनगुटिका, पाद-प्रलेप, रत्नपरीक्षा, वास्तुविद्या, गज, अश्व एवं वृषमादि विद्या के साथ-साथ इन्द्रजाल सम्बन्धी विद्याओं में पाटलिपुत्र के लोग बड़े निपुण थे। आचार्य आर्यरक्षित चतुर्दश विद्याओं का अध्ययन करने हेतु पाटलिपुत्र पधारे थे। इनके अतिरिक्त अन्य रोचक सूचनाएँ निम्नप्रकार मिलती हैं :—

(१) विद्वानों में आत्म सन्तोष के लिए पाटलिपुत्र में ८४ वादशालाएँ बनवाई गई थीं।

(२) सप्त नन्दों का ९९ कोटि द्रव्य पाटलिपुत्र में छिपा पड़ा है। वहीं पर ५ स्तूप हैं जो धन-धान्य से भरे हुए थे। तथा लक्षणावर्ता के राजाओं से युद्ध के समय काम आए थे।

(३) यहाँ रत्नकम्बलों का पर्याप्त व्यापार होता था।

(४) चाणक्य की प्रेरणा से चन्द्रगुप्त एवं पर्वतक की भेंट यहीं पर हुई थी।

(५) यहाँ प्रतिदिन इतने बच्चों का जन्म एवं मुण्डन - संस्कार होता था कि उनके केशों की रस्सी बनाकर पाटलिपुत्र को चारों ओर से बेढ़ा जा सकता था।

(६) पाटलिपुत्र में इतना दूध होता था कि उसके मक्खन से वेगगांकी पहाड़ी नदी को रोकने के लिए बांध बनाया जा सकता था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(७) वहाँ के व्यक्ति इतने धनाढ्य थे कि एक सहस्रयोजन की यात्रा में हाथी के पैरों से जितने गड्ढे हो सकते हैं उन्हें एकही व्यक्ति अपनी स्वर्णमुद्राओं से भर सकता था।

(८) एक आढक (लगभग ४० किलो) तिलों के बोए जाने पर जितने तिल उग सकें उतनी-उतनी स्वर्णमुद्राएँ वहाँ के निवासियों के घरों में सामान्य रूप से पड़ी रहती थीं।

उक्त वर्णनों में अतिशयोक्ति भले ही हो, किन्तु यह तथ्य है कि पाटलिपुत्र नगर स्थापना काल से लेकर दीर्घकाल तक पर्याप्त समृद्ध रहा है। मेगास्थनीज ने भी इसकी समृद्धि एवं सुव्यवस्थाओं का सुन्दर वर्णन किया है। हाथीगुम्फा शिलालेख से यह स्पष्ट है कि नन्द राजा जैन धर्मानुयायी थे। इसीलिए भारतीय इतिहास में उन्हें अपमानित होना पड़ा है।

महासर :--

इसकी पहचान वर्तमान मसाढ़ से की गई है। यह स्थल मुगलसराय आरा रेलवे मार्ग पर कारीसाथ स्टेशन के समीप में स्थित है।

हरिभद्र ने इसका उल्लेख समराइच्चकहा के छठवें भव में किया है. चीनी यात्री ह्यूनासांग ने अपने यात्रा-विवरण में उसे महोशोलो कहा है तथा लिखा है कि वह जैन बौद्ध केन्द्र था। वहाँ की खुदाई में अनेक प्राचीन जैन मूर्त्तियाँ मिली हैं।

उक्त मसाढ़ में एक सरोवर के किनारे प्राचीन विशाल जैन मन्दिर है जिसकी मूर्तिलेख में करूषदेशे आरामनगरे पद आया है इतिहास की दृष्टि से यह उल्लेख महत्वपूर्ण है। यह करूषदेश वही है जहाँ से भ० रामचन्द्र विश्वामित्र आश्रम (जिसकी खोज बक्सर के समीप हो चुकी है) से करूषदेश होते हुए सीता-स्वयम्बर में भाग लेने हेतु मिथिला पहुंचे थे। उक्त कारीसाथ स्टेशन को इतिहास-कारों ने करूषदेश का अवशिष्ट रूप माना है। आरामनगर वर्त्तमान आरा का पूर्वरूप है। महासार से पाटलिपुत्र की यात्रा आरामनगर होकर की जाती थी।

(शेष पृष्ट—४१ पर)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

The Sacred Books of the Jain

1. Ayaro (Acarah) 2 Suyagado (Suteakrtam) 3. Thana (sthanam) 4. Samavao (Samavayah) 5. Viyasa pannat (Vyakhyaprajnaptih) 6. Nayadham thamkahao (Jnatadharm kathah) 7. Uvasagadasao (Upasakabasah) 8. Antagadas (Agtakriddasah) 9. Anuttarovavaiyadasao (Anuttataa parikadasah) 10. Panhavagaranaim (Parasna-Vyakaranar 11. Vivagyguyam (Vipakagrntam).

Some other important Publication

Illustrated Jain Ramayan	—J. C. Jain	85
Contribution of Jainism to Indian Calture.	—Ed. R. C. Dwivedi	4
Dasavaikalika Sutra-Text in Eng. Trans.	—K. C. Lalwani	3
The Doctrin of the Jainas	—W. Schubring	5
The Jaina Philosophy of Non Absolutism	—Satkari Mukerjee	7
Jaina Ethic	—Dayanand Bhargava	2
Jaina Iconography	—B. C. Bhattacharya	7
Jain Sutras-2 Vols.	—Jacobi and Oldenberg	8
Jaina Tarka Bhasha of Acarya Yasovijaya	—Dayanand Bhargava	2
Jaina Theory of perception	—Puspa Bothra	3
Jainism in Early Medieval Karnataka	—R. B. P. Singh	3
Kalpasutra (Text with Tr. & Notes)	—K. C. Lalwani	(Shortly
Lord Mahavira & His Times	—K. C. Jain	60
Mahavir Parichay aur Vani	—Bhagwan Shree	20
Monolithic Jains		40
Syadvada Manjari-Eng. Tr.	—P. W. Thomas	2
Temples of Satrunjaya	—I Burgess	300

MOTILAL BANARASIDASS
Bunglow Road, Jawaharnagar
DELHI-110007, (INDIA)

Branches :

P. B. 75,
Chowk, Varanasi-221001

Ashok Rajpath
Patna-800 004

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सिद्धक्षेत्र चूलगिरि बावनगजा: इतिहास के आलोक में

—डा० कस्तूर चन्द्र कासलीवाल

जैनधर्म के २४ तीर्थंकरों में ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर हैं। सुदुर प्राक् ऐतिहासिक काल में जन्मे ऋषभदेव आदिनाथ के नाम से भी विख्यात हैं। ऋषभदेव मानवयुग के प्रथम उपदेष्टा माने जाते हैं क्योंकि उन्होंने मानव मात्र को सर्वप्रथम कैसे रहें क्या खावें और क्या पीवें उसकी शिक्षा दी थी तथा कृषि मसि असि वाणिज्य विद्या एवं शिल्प शिक्षा के माध्यम से मानव मात्र को विज्ञान युग में प्रवेश करने का मार्ग प्रशस्त किया था।

ऋषभदेव जैनधर्म एवं साहित्य के अतिरिक्त वैदिक साहित्य में भी यत्र-तत्र याद किये गये हैं। वैदिक ऋचाओं में उनके महात्म्य का वर्णन करते हुए उनको महत्ता स्वीकार की गयी है। भागवत पुराण में उनको आठवाँ अवतार माना गया है। नाथ सम्प्रदाय में भी आदिनाथ को विशेष स्थान प्राप्त है। ऋषभदेव का जन्म अयोध्या नगरी में हुआ था जो भारतीय जन-मानस में सबसे अधिक चर्चित बनी हुई है समस्त जैन समाज अयोध्या भी सिद्धक्षेत्र मानकर पूजा करता है तथा प्रतिवर्ष हजारों लाखों जैन भाई बहिन यात्री बनकर दर्शनार्थ जाते हैं। भगवान् ऋषभदेव का निर्वाण स्थल कैलाश पर्वत है जिसकी वह प्रतिदिन पूजा करता है।

देश के सभी भागों में ऋषभदेव आदिनाथ के नाम पर सैकड़ों हजारों मन्दिर हैं, और उनमें संख्यातीत प्रतिमाएँ विराजमान हैं। राजस्थान में केशरियानाथ (उदयपुर) चांदखेडी (झालावाड), सरवाड (अजमेर) मोजमाबाद, मालपुरा, जयपुर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के मन्दिर आदिनाथ की विशाल एवं मनोज्ञ प्रतिमाओं के कारण तीर्थस्थान माने जाते हैं। इसी तरह भगवान ऋषभदेव एवं उनके दो पुत्र भरत बाहुबलि की विशाल प्रतिमाओं के कारण बम्बई में जोरबली का मन्दिर बम्बई वासियों के साथ–२ समस्त देश वासियों के लिये आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र सम्राट भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा इसकी अधिकांश विद्वान् स्वीकार करते हैं।

ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र बाहुबली की सबसे ऊँची ५७ फुट की विशाल खडगासन प्रतिमा जो भगवान गोम्मटेश्वर के नाम से विश्व विख्यात है कर्नाटक के श्रवणबेलगोला की पहाड़ी पर विराजमान है। भगवान बाहुबली की यह प्रतिमा विश्व का आठवां आश्चर्य के रूप में विख्यात हैं। अभी सन १९८१ को सारा देश उनका १००० वाँ पावन अवसर पर महामस्तकाभिषेक महोत्सव मना चुका है। श्रवणबेलगोला के अतिरिक्त कर्नाटक प्रदेश के वेणूर, कारकल एवं धर्मस्थल में भी भगवान बाहुबली की विशाल एवं मनोज्ञ तथा प्राचीन प्रतिमाएं विराजमान हैं।

भगवान ऋषभदेव की सबसे ऊंची प्रतिमा जो बावनगजा के नाम से प्रसिद्ध है, बड़वानी पश्चिम निमाड़ मध्य प्रदेश में स्थित हैं। बावनगजा की यह खडगासन प्रतिमा ८४ फुट ऊंची है जो सतपुड़ा एवं विन्ध्याचल की पर्वतमालाओं की ऊंची चोटी पर स्थित है इसलिये इसे चूलगिरि के नाम से भी जाना जाता हैं। निर्वाण काण्ड में बड़वानी नगर की दक्षिण दिशा में चूलगिरि से इन्द्र जीत एवं कुंभकर्ण के निर्वाण जाने के कारण इसे सिद्धक्षेत्रों में गिनाया गया है। वास्तव में सतपुड़ा की पर्वतमालाओं को हजारों श्रमणों की साधना स्पर्शी एवं निर्वाण स्पर्शी होने का गौरव प्राप्त है।

सतपुड़ा की हरी भरी पर्वत श्रेणियों में एक शिलाखण्ड में निर्मित भगवान ऋषभदेव की ८४ फीट ऊंची सुविशाल प्रतिमा खडगासन मुद्रा में अनेक शदियों से साधनारस्थित है जिसकी शिल्प कला देखते ही बनती हैं यह प्रतिमा विश्व की सर्वोन्नत विशाल और शिल्प वैभव सम्पन्न प्रतिमा है। ऐसी जनश्रुति है कि यह प्रतिमा बीसवें तीर्थंकर मुनिसुब्रतनाथ के समकालीन है तथा इसे रामायण कालीन शिल्पियों ने तैयार किया था, जैसे पर्वतों में सुमेरु पर्वत को सबसे ऊंचा पर्वत माना जाता है वैसे ही प्रतिमाओं में बावनगजा की प्रतिमा सर्वोन्नत प्रतिमा है। कोई आश्चर्य नहीं उज्जैन के अतिमुक्तक श्मशान में हुये भयंकर उपसर्ग पर विजय पाने के पाश्चात् भगवान महावीर के चरण कमल यहाँ की भूमि पर पड़े हों और उन्होंने इस विशाल प्रतिमा के दर्शन किये हों। इस दिशा में खोज की आवश्यकता है। भगवान ऋषभदेव की इस प्रतिमा का परिमाण निम्न प्रकार है—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मूर्त्ति की कुल ऊंचाई	८४ फुट
एक भुजा से दूसरी भुजा तक का विस्तार	२६ फुट ३ इंच
भुजा से अंगुली तक	४६ फुट २ इंच
कमर से एडी तक	३७ फुट
सिर का घेरा	२६ ,,
पेट की लम्बाई	१३ फुट ९ इन्च
नाक की लम्बाई	३ फुट ११ इन्च
आंख की लम्बाई	३ फुट ३ इंच
कान की लम्बाई	९ फुट ८ इंच
एक कान से दूसरे कान तक की दूरी	१७ फुट ६ इंच
पांव के पञ्जे की चौड़ाई	५ फुट

बावनगजा नाम की प्रसिद्धि

भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा का नाम बावनगजा कब से प्रसिद्ध हुआ इस सम्बन्ध में विस्तृत खोज की आवश्यकता है। मूर्त्ति की ऊंचाई ८४ फुट है जिसके २८ गज होते हैं। ये २८ गज ५२ गज तो नहीं हो सकते इसलिये हमारा विश्वास है कि बावनगजा का नामकरण इस क्षेत्र के प्राचीन नाम बावगज्ज के कारण है जैसा कि यहाँ पर प्राप्त दो शिलालेखों के ऊपर गाँव के नाम का उल्लेख मिलता है, बावगज्जा को धीरे-धीरे बावनगजा कहा जाने लगा फिर वह प्रतिमा के नाम के साथ जुड़ गया।

इतिहास के पृष्ठों में

इतिहास साक्ष्य की दृष्टि से अभी तक प्रतिमा प्रतिष्ठा की निश्चित तिथि तक नहीं पहुँचा जा सका है और न इतिहासविदों ने इस दृष्टि से गम्भीर प्रयास ही किया है। यह हमारी इतिहास के प्रति उपेक्षा के कारण ही है। हमारी इस उपेक्षा के कारण बहुत से तीर्थक्षेत्रों का स्वामित्व ही खतरे में पड़ गया है। अब तो ऐसा समय आ गया है कि हम प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना को शिला-पट्ट पर अंकित करावें अथवा कालपात्र में घटनाओं को लिखकर इसे भूमिगत कर दें जिससे भविष्य में इसके स्वामित्व को अथवा इतिहास को जानने के लिये उसे प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

बावनगजा का अब तक उपलब्ध इतिहास

I बडवानी बावनगजा का प्रथम उल्लेख संवत ११२९ (सन् १०७२) का मिलता है। इसके अनुसार ग्वालियर पर्वत पर जिन प्रतिमाओं का निर्माण एवं प्रतिष्ठा कराने वाले लाडनूं (राजस्थान) के टोडरसाहु ने अपने गुरू महोचन्द्र कीं

आज्ञा से बावनगजा (बड़वानी) में पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी और इस पावन कार्य में संख्यातीत धन खर्च किया। २

II इसके पश्चात् १०० वर्ष तक बावनगजा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। संवत् १२२३ के पूर्व बावनगजा क्षेत्र के जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ हुआ। यह कार्य कितने दिनों तक चला इसका तो कोई उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन संवत् १२२३ के दो महत्वपूर्ण लेख मन्दिर के पूर्व की ओर एवं दक्षिण की ओर अंकित हैं। लेख बड़े ही ऐतिहासिक हैं। प्रथम लेख में रामचन्द्र मुनि का नामोल्लेख है। मुनि श्री बडे ही प्रभावशाली थे। राजाओं द्वारा पूजित थे। उन्होंने यहाँ के जिन भवनों का जीर्णोद्धार कराया। ३ शिला-पट्ट प अंकित कराते समय समारोह तो अवश्य कराया होगा, लेकिन भगवान ऋषभदेव का महामस्तकाभिषेक सम्पन्न हुआ या नहीं इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

मन्दिर के दर्शन की ओरदूसरा लेख है जिसमें राजाओं द्वारा पूजित लोक नन्दनि के शिष्य श्री देवनन्दमुनि थे। ने मुनिसंघ के तिलक थे। धार्मिक ज्ञान से मुक्त तपस्या से भूषित देहवाले एवं प्रभावशाली उपदेश थे। उनकी कीर्त्ति भी राम चन्द मुर्ख के समान थी। उन्होंने भी यहाँ जिन मन्दिर का निर्माण करवाया। १

III उक्त घटना के पश्चात् फीट १५० वर्षों तक बावनगजा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इसका प्रभाव कारण इस क्षेत्र का तत्कालीन आहारकों अथवा उनके शिष्यों का विशेष सम्बन्ध नहीं रहता है। यहाँ पर यदि भट्टारक पीठ होती तो क्षेत्र का इतिहास दूसरा ही होता। संवत् १३८० में क्षेत्र के जीर्णोद्धार होने का उल्लेख स्व० श्री नाथुराम जी प्रेमी के अपनी 'जैन साहित्य और इतिहास' पुस्तक में किया है। २ लेकिन उन्होंने किसी लेख का उद्धरण नहीं किया है।

---

१ जैनशिलालेख संग्रह तृतीय भाग पृष्ठ सं० १४३

२ खण्डेलवाल जैन समाज का वृहद इतिहास–डा० कासलीवाल पृष्ठ संख्या

३ बवागन्ज (मालवा) संस्कृत संवत् १२२३ (११६७ ई०)

यस्य स्वच्छ तुषार कुन्द विशदा कीर्त्तिगुणानां निधि
श्रीमान् भूपति वृन्दवन्दित पदःश्रीराम चन्द्र मुनिः ।।
विष्वक्ष्माभृद् खवे शेखर शिखा सञ्चारिणी हारिणी ।
उर्व्यां शत्रुजितो जिनस्प भवन व्याजेन विस्फूर्जति ।।
रामचन्द्रमुनेः कीर्त्तिः संकीर्ण भुवनं कित्र ।
अनेक लोक संघर्षाद् गत सवितु रन्तिकं ।
संवत् १२२३ वर्षे भाद्रपदवदि १४ शुक्रवार
जैन शिला लेख संग्रह पृष्ठ १४३

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

IV इसके पश्चात् संवत् १५१६ (सन् १४५९) में फिर मन्दिर का विशालस्तर पर जीर्णोद्धार कराया गया। जीर्णोद्धार एवं पूजा प्रतिष्ठा का कार्य भट्टारक क्षेत्र कीर्त्ति के शिष्य हेमकीर्त्ति उनके शिष्य कमलकीर्त्ति एवं उनके शिष्य मंडलाचार्य श्री रत्नकीर्त्ति को क्षेत्र पर स्थित मन्दिर का जीर्णोद्धार करना कर वृद्ध चैत्यालय के पास १० जिन वसितिकाओं (मन्दिरों) का निर्माण करवाया। निर्माण करवानेवाले महेश्वर डालू उनकी भार्या श्वेतु एवं पद्भिनी श्वेतु के पुत्र पारस एवं वादा के इन्द्रजीत की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवा कर उसकी प्रतिदिन पूजा करने लगे। मन्दिर के उत्तर की ओर सूत्रशाका स्वाध्यायशाका का जीर्णोद्धार करवाया गया तथा फिर मन्दिर के पश्चिम की ओर आचार्य रत्नकीर्त्ति के चरण पादुका स्थापित की गयी।

V उक्त घटना के पश्चात् यहाँ भट्टारकों का आना जाना प्रारम्भ हो गया था। वह बीं शताब्दी भट्टारकों का स्वर्णयुग था। समाज के वे सर्वोपरि धार्मिक नेता थे। किसी क्षेत्र विशेष को अथवा व्यक्ति विशेष को चमकाना उनके लिये साधारण कार्य था समान की भट्टारकों को सिर आखें पर रखता था।

वह बीं शताब्दी के अन्तिम चरण में चूलगिरि बावनगजा की बन्दना के लिये सकल] सिद्धान्त के ज्ञाता निर्गन्थाचार्यवय श्री सुमतिकीर्त्ति के शिष्य एवं भट्टारक रत्न भूषण द्वारा सेवित भट्टारक ज्ञानभूषण पधारे। उनके आगमन पर यहाँ भी किसी ना किसी समारोह का आयोजन हुआ होगा। इस प्रेशास्ति में केवल चूलगिरि का ही नाम दिया है बावनगजा के नाम उल्लेख नहीं किया।

VI उक्त विवरण पश्चात् १००-१५० वर्ष तक बावनगजा का इतिहास मौन हो जाता है। हम यह तो नहीं मान सकते कि इतने लम्बे समय तक यहाँ कुछ भी नहीं हुआ होगा लेकिन इतिहास के वे स्त्रोतों का हम पता नहीं पाये है, लेकिन इसकी खोज जारी है।

---

१. बावगज्जा मालवा, संस्कृत

ओं नमो वीतरागाय।
आसीय्य: कलिकाल कल्मषकरिध्वंसेक कंठीर वो।
वेन स्मापतिमौलि चुम्बितपद: यो लोकनन्दोमुनि:।
शिस्यस्तस्य ससर्वसंघतिलक: श्री देवनन्दोमुनि:
धर्म ज्ञाना तपोनिधिर्मति गुलग्राम: सुवाचांनिधि: ॥१॥
वंगे तस्मिन विपुलतपसां सम्भव: सत्त्वनिष्टो।
वृत्ति पापां विमलमनसा त्पज्यविद्या विवेक:
रम्पं हर्म्य सुरपतिजित कारितं येन विद्या
शेषा कीर्त्ति भ्रमति भुवने रामचन्द्र: स एष: ॥ संवत् १२२३ वर्षे।

२. देखिये जैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ संख्या २०७

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संवत् १७३२ (सन् १६७२) में यहाँ एक महत्त्वपूर्ण आयोजन होता है जिसमें भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति के शिष्य भट्टारक त्रिभुवनचन्द्र आपके संघ के साथ बावनगजा पधारे। भटटारक त्रिभुवन चन्द्र ऐसे भट्टारक थे जिनका जन्म से लेकर मृत्यु तक ६० वर्ष का इतिहास लिपिबद्ध है जिसकी पांडुलिपि उदयपुर के संभवनाथ दि० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। उनके जीवन वृत्त में लिखा हुआ है कि भटटारक जी ने संवत् १७३२ में महेश्वरनगर में चतुर्मास किया। वहाँ से वे उज्जयिनी आये। इनके सानिध्य में वहाँ के श्रावकों ने विविध पूजाए एवं व्रत उपवास किये। वहाँ से भट्टारक जी अपने संघ के साथ बडवाणी बावनगजा चूलगिरि सिद्धक्षेत्र की यात्रा सम्पन्न की। भट्टारक जी ने पूजा उवावास किया। फिर वहाँ से वे खंडवा पधारे। "पहिले भट्टारकों को श्री पूजाजी कहा करते थे।

V.I इसके पश्चात् तीर्थयात्राओं का बराबर क्रम चलता रहता है और बडवानी बावनगजा तीर्थयात्रा का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ते बावनगजा का यश चारों ओर फैल जाना है तथा यात्रियों का आवागमन का भी बढ़ता रहता है। यह सब जैनेतर बन्धुओं को अच्छा नहीं लगा और वे वहाँ दत्ताचर्या के चरण बनपा कर पूरे तीर्थ को ही वैष्णव तीर्थ मानने लगे जैन समाज ने इनके इस कथना का घोर विरोध किया। लेकिन विरोध का कोई परिणाम नहीं निकला। इस कारण जैन यात्रियों ने वहाँ जाना बन्द कर दिया। लगातार नए वर्ष तक समाज का विरोध चलता रहा। अन्त में सन् १८८३ में बडवानी नरेश एव मध्य प्रदेश के पोविरिवषा एजेन्ट वहाँ पधारे। उनके समक्ष जैनेतर बन्धुओं ने इस तीर्थ को पूर्णतः दिगम्बर जैन समाज का तीर्थ स्वीकार किया और उसका पूरा प्रबन्ध बडवानी नरेश के सानिध्य में दिगम्बर जैन समाज को सौंप दिया।१ वहाँ विशाल उत्सव आयोजन किये गये। मेला लगा और समस्त जैन समाज की चैन की सांस ली।

बबागजा (मालवा) सं० १५१६ १४५४ ई०
मन्दिर के दरवाजे पर

१. स्वामी श्री संवत् १५१६ वर्षे मार्गशीर्ष वदी ९ रवौ सूरसेन मेहमुन्द राज्यश्री काष्ठासंके मालुरगद्दे पुष्करगजे भट्टारक श्री क्षेत्रकीर्ति देवः व्रत नियम स्वाध्यायानुष्ठाना तपोपगमनैक नियम भट्टारक श्री हेमकीर्ति देव तच्छिष्य महावादवादीश्वर रायवादी पितामह सकल विद्वज्जन चक्रवर्तिनवः कमलकीर्तिदेवा सच्छिवा जिनसिद्धान्त पाठ पयोधितामकान्तरोरसति मडलचार्य श्री रत्नकीर्तिना जीर्णोद्धारः कृतः बृहत्चैत्यालय पार्श्वे दशार्जनवगतिकाहा कामेपिता भट्टेश्वर द्वितीय डालू भार्या श्वेतुद्धि पद्मिनी श्वेतु पुत्र सं० वाढा सं० पारस एतैः इन्द्रजित; प्रतिमां प्रतिष्ठाप्य नित्यमर्चयन्तो पूजयन्तो वा तावच्छ्री संघस्य।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

VIII संवत् १९४४ (सन् १८८७) में अंबालानगर के श्रावक मुसद्दीबाल अग्रवाल के आग्रह पर श्रावक दुलीचन्द (जयपुर) में एक जैन तीर्थयात्रा दर्पण पुस्तक तैयार की थी जिसमें एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ पर जाने आने के मार्ग के अतिरिक्त नगरों में श्रावकों की संख्या मन्दिरों की संख्या एवं धर्मशाला आदि उल्लेख किया है। इस पुस्तक में बडवानी बावनगजा चुलगिरि यात्रा का निम्न प्रकार वर्णन किया है २

यहाँ से बडवानी बारह मील है। यहाँ दो धर्मशाला बड़ी है वहाँ ठहरा मन्दिर एक है। खण्डेलवाल श्रावकों के चालीस घर हैं। यहाँ से पूजन की सामग्री लेके चले। चार मील ऊपर सोलह मन्दिर नये बने हैं इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९४० के माघ शुक्ला तृतीया को हुई थी। यहाँ से एक मील चूलगिरि पर्वत के उपर एवं मन्दिर प्राचीन है। इनमें प्रतिमा का समूह है। बडवानी नगर के दक्षिण भाग के चूलगिरि पर्वत के शिखर बिषय इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण ये दो मुनि मुक्ति गये हैं इहाँ से पूजा करके बडवानी नगर आवें।

IX विक्रम संवत् १९४० (सन् १९१३ में सेठ ठाकुर दास भगवान दास जौहरी बम्बई ने एक श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन यात्रा दर्पण तैयार की थी जिसका प्रकाशन बम्बई के ही खेमराज श्री कृष्णदास ने किया था। यात्रा विवरण में बड़वानी बावनगजा सिद्धक्षेत्र का जो परिचय दिया गया है वह निम्न प्रकार हैं——

मालवा प्रान्त के जिला सरदारपुर की छावनी यह नगर बड़वानी रियासत की राजधानी मह (M.P.) स्टेशन से करीब ६० मील है। स्टेशन में बड़वानी शहर तक पक्की सड़क है। सवारी हर वक्त किराये पर मिलती है प्राचीन काल में

मन्दिर के उत्तर की ओर

संवत् १५?६ वर्षे शिरनाथगुन माला शिलाडालर सूत्रगाथा जीर्णों यत:।

मन्दिर के पश्चिम की ओर

आचार्य श्री रत्नकीर्ति पंडित साहु

मन्दिर के दरवाजे के स्तम्भ पर — जोगीजगमया इसजोतराडल

प्रतिमा के चरण पर से — कण्ठनाथ साधु चतुर विहतिहिलि साक साला इह भथति

जैन शिलालेख संग्रह पृष्ठ ४१०

१. त्याहां थी श्री पूजि बडवानी बावनगजा चूलगिरि सिद्धक्षेत्र जी यात्रा की थी। श्री पूजि पूजा उचारण
२. जैन गजट वर्ष
३. अजग्राड़म में

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

४०० वर्ष पूर्व इस नगर में केवल कुछ मिट्टी की झोपड़िया देखी जाती थी। समयानुसार इसकी व्यापार आदि में बढ़ती होने के कारण अच्छा आबाद हो गया है। प्राचीन काल में इसका नाम सिद्ध नगर था। पीछे बड़वानी नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह बात शहर में जो रंगारा नामक बावडी है उसके लेख से मालूम होती है। सिद्ध नाथ का जो पुराना मन्दिर यहाँ पर है खास जैनियों का ही था। शैवों का प्राबल्य होने के कारण उन्होंने यह मन्दिर अपने अधीन कर लिया और उसमें महादेव की स्थापना कर दी।

इस शहर की मनुष्य संख्या इस समय करीब ७००० हैं जिसमें दि० जैनियों के २७ घटों की १०६ मनुष्य संख्या है। एक बड़ा भारी दिगम्बर जैन मन्दिर है जिसमें धर्मशाला अनुमान २०० हैं और एवं पाठशाला भी है तथा दो धर्मशालाएँ हैं जिसमें करीब २०० यात्री ठहर सकते हैं।

धर्मशालाओं में एक रियासत की और दूसरी प्रताप कुंअरबा साहेब के स्मरणार्थ बनवाई हुई हैं। विक्टोरिया हाईस्कूल, विक्टोरिया बगीचा, स्टेट, डिस्पेन्सरी, पोस्ट आफिस, राजमहल आदि देखने योग्य हैं। व्यापार हर तरह का होता है। विशेष कर अनाज और अफीम का अधिक होता है।

बड़वानी से दक्षिण में थोडी दूरी पर चूलगिरी नामक पहाड़ है यहाँ से इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण ने मोक्ष पद प्राप्त किया है।

२०वीं शताब्दी में बावनगजा भगवान ऋषभदेव का महामस्तकाभिषेक कितनी बार हुआ इसका लेखा जोखा हमारे पास नहीं है। और ना क्षेत्र के परिचय पत्र में इसका उल्लेख किया गया है। ऐसा लगता है कि यहाँ नियमित महामस्तकाभिषेक करने की कोई परम्परा नहीं रही और यदि महामस्तकाभिषेक हुआ भी हैं तो उसका इतिहास समाचार पत्रों की फाइलों में दबा पड़ा है।

उक्त ऐतिहासिक लेखों के अतिरिक्त अभी ढेर सारी सामग्री और हो सकती है जो शास्त्र भण्डारों, शिलालेखों, मूर्त्तिलेखों एवं समाचार पत्रों के अंकों में बिखरी पड़ी है। जब तक उसकी पूरी खोज नहीं हो जाती बावनगजा क्षेत्र का इतिहास अधूरा ही रहेगा। अच्छा तो यह होता कि महामस्तकाभिषेक के पूर्व इस दिशा में प्रयास किया जाता लेकिन अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। मैं परम पूज्य आचार्य विद्यानन्दजी महाराज से निवेदन करना चाहूंगा कि वे क्षेत्र को प्रबन्ध समिति से इस कार्य को पूरा कराने की कृपा करें।

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

ऐतिहासिक महोत्सव

२१ जनवरी ६१ की पावन वेला में होने वाला बावनगजा भगवान ऋषभदेव का महामस्तकाभिषेक एवं उसके पूर्व पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन भारतीय इतिहास एवं विशेष जैन समाज के इतिहास में अनूठी घटना होगी। इस प्रकार का विशाल आयोजन इतिहास में प्रथम बार हो रहा है जहाँ भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा का पूरा जीर्णोद्धार होकर उसका नया रूप हमारे सामने आयेगा। यह सब जैन धर्म एव संस्कृति के महान प्रचारक एवं विश्व में अहिंसा के उपदेष्टा आचार्य विद्यानन्द जी महाराज एवं अन्य आचार्यों, सन्तों, भट्टारकों के सानिध्य में हो रहा है। साथ में लाखों जैन धर्मानुयायियों के अतिरिक्त भारत के उपराष्ट्रपति श्री शंकर दयाल शर्मा, प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर, मुख्यमंत्री श्री सुन्दर लाल पटवा, केन्द्रीय नेताओं की उपस्थिति में सम्पन्न होगा। महामस्तकाभिषेक के इस विशाल समारोह से जैन समाज की छवि और अधिक धन्य होगी तथा इसे धार्मिक इतिहास में नया आयाम मिलेगा।

८६७, अमृत कलश
बरकत नगर, किसान मार्ग
टोंक रोड, जयपुर-१५

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(पेज न० ३१ का शेषांक)

कादम्बरी :

समराइच्चकहा में प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन-प्रसंग में कादम्बरी नामक अटवी का वर्णन किया है जिसमें आम, चन्दन, कदम्ब, एवं इमली के वृक्ष प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे। इस भूभाग की नदी में नावें भी चलती थी। यह अटवी वर्तमान कोडरमा एवं हजारीबाग के आसपास सम्भावित है, क्योंकि इस प्रदेश में आज भी आम, चन्दन, कदम्ब इमली, खहिर आदि के प्रचुरमात्रा में वृक्ष पाए जाते हैं, साथ में आज भी यह प्रदेश अपने घने जंगल एवं वन-सम्पदा के लिए प्रसिद्ध है। बहुत सम्भव है कि वर्तमान कोडरमा (बोमो, हजारीबाग रोड पर स्थित) ही, प्राचीन कादम्बरी का परिवर्तित नाम हो।

आचार्य हरिभद्र के उक्त सन्दर्भ मध्यकालीन भारतीय इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन पर आगे की तुलनात्मक अध्ययन एवं शोध-खोज की आवश्यकता है।

युनिवर्सिटी प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संस्कृत एवं प्राकृत विभाग
ह०दा० जैन कॉलेज, आरा (विहार) (अवकाशप्राप्त)
(मगध विश्वविद्यालय)

Ac. Gunratnasuri MS

Jin Gun Aradhak Trust

प० प्रवर बाबू प्रभुदास जी लेख माला–९

पं० प्रवर बाबू प्रभुदास जी का काल-क्रमिक जीवन विवरण (१८१३ से १८७६ ई०)

—विदुषीरत्न पं० ब्रजबाला देवी
—सुबोध कुमार जैन

१८५७ सं०, १८०० ई०

बाबू प्रभुदास के पितामह लाला मवासी लाल जी शाहजादपुर (उ० प्र०) छोड़कर अपने तीन पुत्रों श्री गणेशी लाल जी, श्री मिट्ठू लाल जी एवं श्री रामलाल जी के साथ बनारस सपरिवार आकर बसे। एक समय में शाहजादपुर नगरी में जैनियों और जिन मन्दिरों की बड़ी संख्या थी पर कालान्तर में ऐसा नहीं रहा और न यह व्यापारिक केन्द्र ही रहा।

१८६९ सं०, १८१३ ई०

श्री गणेशी लालजी के प्रथम पुत्र बाबू प्रभु दासजी का जन्म हुआ। बाद में तीन और पुत्रों श्री अरहन्त दास, श्री जिनेश्वर दास और श्री मुनेश्वर दासजी के जन्म हुए।

१८७२ सं० १८१५ ई०

पूज्य पिता श्री गणेशी लालजी ने भदैनी, बनारस में गंगा के किनारे आवास हेतु मकान और जमीन ले लिए थे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१८८६ सं०, १८३० ई०

बाबू प्रभुदास जी का विवाह हुआ। वे बनारस में आरा के सुप्रसिद्ध जैन कवि और साधक वृन्दावन जी (जन्म १८४२) तथा भट्टारकों के निकट सम्पर्क में आए। धार्मिक वातावरण बना और मनन/अध्ययन/ पूजन-पाठ/लेखन का क्रम बन गया।

१८८९ सं०, १८३२ ई०

१ बाबू प्रभुदास जी अपनी पैत्रिक भूमि शाहजादपुर गए और यमुना के किनारे कोसम गांव के निकट प्राचीन वत्स देश की राजधानी कौशाम्बी के ऐतिहासिक खण्डहरों में बिखरी प्राचीन मूर्तियाँ एकत्रित कर कालान्तर में आरा के महाजन टोली स्थित अपने जिनालय में लाकर विराजमान कीं। हस्तलिखित ग्रन्थों को भी एकत्रित करना आरम्भ किया। तीर्थंकर पद्मप्रभु के गर्भ जन्म और ज्ञान कल्याणक स्थान पर निर्मित प्राचीन जीर्ण गढ़वा मन्दिर की यात्रा की, तत्पश्चात् फफोसा, चम्पाहाबाजार, पाली तथा अन्य वहां के मन्दिरों और खण्डहरों के दर्शन किए।

२ शाहजादपुर के सुप्रसिद्ध कवि बिनोदी लाल जी के निकट सम्पर्क में आए।

१८९१ सं०, १८३४ ई०

कौशाम्बी गढ़वा का जीर्णोद्धार आरम्भ कराया। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों एवं चित्रों को इकट्ठा करने तथा संभाले रखने का दुरुह कार्य उन्होंने आगे बाढ़ाया। धर्म अध्ययन/मनन का क्रम चल रहा था। संस्कृत, हिन्दी, ऊर्दू, फारसी भाषाओं का इन्हें ज्ञान था। इन भाषाओं में पठन-पाठन का क्रम चल रहा था।

१८९२ सं०, १८३५ ई०

व्यापारी फर्म "दुलहिन जी कोठी" की आरा शाखा में कार्यभार संभाला। एक लाख रुपये के हारे और छोड़े हुए अपने मित्र के मुकदमें को स्वंय अपने खर्च से अपील कर कोर्ट के द्वारा रकम वसूल कर और फिर उस पूरी रकम को मात्र खर्च काटकर अपने मित्र को वापस दे देने पर बाबू प्रभुदास जी की भारी प्रसिद्धि हुई।

१८९३ सं०, १८३६ ई०

बाबू प्रभुदास जी ने २४ वर्ष के अल्पवय में ही एकाहार का व्रत लिया और अगले ४० वर्षों तक २४ घन्टे में मात्र एक बार भोजन करने के इस नियम का अखण्ड आजन्म पालन किया। दर्शन-पूजन के उपरान्त ही भोजन करने का नियम भी ले लिया था। उसे भी अत्यन्त भक्ति पूर्वक आजन्म पालन किया। इसी समय आरा में पं० परमेष्ठी सहाय और पंडित जगमोहन दास दो विद्वान कवि थे जो शास्त्रीय लेखन और पठन-पाठन किया करते थे। डा० नेमिचन्द शास्त्री ने इनके विषय में लिखा है (भगवान महावीर भाग ४ पृष्ठ ३०५) जिससे ज्ञात होता है कि

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

परमेष्ठी जी ने अपनी कृति "अर्थप्रकाशिका" जयपुर निवासी तथा सुप्रसिद्ध बचनिकार पं० सदासुख जी के पास संशोधनार्थ भेजी थी। पं० सदासुखजी का आरा से घनिष्ठ सम्पर्क रहा होगा।

पं० जगमोहन दास की कृति 'धर्मरत्नोद्योत, नाम से पं० पन्नालाल जी बाकलीवाल के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो चुकी है। इन दोनों को हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास से अलग नहीं किया जा सकता।

१८९६ सं०. १८३९ ई०

इनकी प्रथम पत्नि से एक मात्र पुत्री कुन्दन बीबी हुई जिस का विवाह आरा के रईस बाबू प्रद्युम्न कुमार के पुत्र श्री केशर दास जी से सम्पन्न हुआ। इसीवर्ष प्रधुम्न कुमार जी ने आरा के सुप्रसिद्ध चन्द्र प्रभ मन्दिर का निर्माण कराया। इसके लिए सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी बाबू कुँवर सिंह जी ने जमीन प्रदान की थी। यक्ष और यक्षिणी ज्वालामालिनी देवी की नयनाभिराम मूर्तियाँ भी विराजित की। आरा शहर की जगह आरामनगर नाम का उल्लेख मूर्तियों में मिला है।

१९०७ सं०, १८५० ई०

बाबू प्रभुदास ने आरा में जमीन्दारी खरीदना प्रारम्भ किया। उनके द्वारा संस्कृत-हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज एवं अध्ययन के क्रम चलते रहे। वे स्वंय भी लिखा करते थे तथा पुत्र-पुत्रियों को धार्मिक शिक्षा दिया करते थे। पूजा पाठ में उनका काफी समय निकलता था। यात्राओं में वे छोटी सुवर्ण मूर्ति एक छोटी डब्बी में रखकर गले में बाँधे रखते थे वह छोटी मनोज्ञ प्रतिमा अभी भी उपलब्ध है ताकि नित्य पूजा-पाठ और उनके उपरांत ही एकाहार करने का क्रम भंग नहीं हो। कपड़ा घर में धुलवाते थे। नित्य तेल मर्दन कराते थे एवं वस्त्र आदि का परिग्रह सीमित रखते थे।

१९०८ सं०, १८५१ ई०

ग्वालियर गद्दी के सुप्रसिद्ध भट्टारक जिनेन्द्र भूषण ने बाबू प्रभुदास जी को छः मन्दिरों के निर्माण कराने का व्रत दिलाया। इन्होंने असमर्थता व्यक्त की तो उन्होंने कहा कि व्रत ले लो, शुभ कार्य अवश्य पूरा होगा।

१९१० सं० १८५३ ई०

भदैनी के गंगा तट पर अपने निवास स्थान के निकट बड़ी धर्मशाला और घाट तथा धर्मशाला की छत पर तीर्थंकर सुपार्श्व प्रभु का मनोज्ञ मन्दिर भगवान के जन्म स्थान की पुण्य स्मृति में निर्माण कराया। आज भी वह घाट प्रभुदास जैन

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

घाट कहा जाता है। इनके पौत्र देव कुमार जी ने कालान्तर में यहीं स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थापना की।

१९१२ सं०, १८५५ ई०

अपने तीनों भाइयों श्री अरहन्त दास, श्री जिनेश्वर दास एवं श्री मुनीश्वर दास के साथ भदैनी मन्दिर बनारस की प्रतिष्ठा माघ सुदी पाँच रविवार की संध्या रेवती नक्षत्र में (शिला पट्ट के अनुसार) कराई। शिला पट्ट का शिलालेख भास्कर के जून १९८८ के अंक ४१-१ में छपा है।

स्वतंत्रता सेनानी वीर कुँवर सिंह के निकट सम्पर्क में आ चुके थे। इन्हें ई० १८५७ के पूर्व तथा सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता संग्राम के दौरान मित्रवत् यथाशक्ति सहयोग दिया था।

१९१५ सं०, १८५८ ई०

बाबू प्रभु दास जी की द्वितीय पत्नि से पुत्र बाबू चन्द्र कुमार जी का जन्म हुआ, इन्हीं से तीन पुत्रियाँ भी थीं। जिनमें से दो का विवाह आरा में और एक का छपरा में हुआ था। तीनों के नाम थे—मन्नो बीबी, कन्नो बीबी और धन्नो बीबी।

१९१८ सं०, १८६१ ई०

"दुधा रस की कथा" पद्य में पं० प्रवर प्रभुदास जी द्वारा स्वरचित एवं हस्तलिखित ११ पृष्ठों और ५८ चौपाइयों तथा दोहों में वैशाख सुदी ६, सं० १९१८, शुक्रवार की प्रति भवन में उपलब्ध है। इसका प्रकाशन श्री जैन सिद्धान्त भास्कर के दिसम्बर १९८८ के अंक में हुआ है। ऐसी आशा की जाती है कि पं० प्रभुदास की और भी काव्य कृतियाँ हैं।

१९१९ सं०, १८६२ ई०

कौशाम्बी, पाली, फफोसा और चन्द्रावती में एक साथ एक जैसे मन्दिरों के निर्माण हेतु कटे छँटे पत्थर मँगाये। कौशाम्बी (मढ़वा) जीर्णोद्धार एवं नये मन्दिर का निर्माण कार्य आरंभ किया। पाली में मन्दिर निर्माण के लिए जमीन खरीदी। इनके पुत्र बाबू चन्द्र कुमार जी ने बाद में कौशाम्बी मन्दिर एवं धर्मशाला निर्माण कार्य पूरा कराया। पुराने मन्दिर जी में चरणपादुका, पद्मप्रभु भगवान की, सम्वत् १६०० की है।

१९२० सं०, १८६३ ई०

आरा में महाजन टोली के अपने आवास की छत पर एक शिखर बन्द बड़ा मन्दिर बनवाकर तीर्थंकर शांतिनाथ की सर्वतोभद्र लगभग ४ फुट ऊँची खड्गासन

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

की प्रतिष्ठा कराई। ग्वालियर घराने के १३ वीं पीढ़ी के भट्टारक राजेन्द्र भूषण के उपदेशों से भी प्रभावित थे। कौशाम्बी के खंडहरों से तथा अन्य स्थानों से एकत्रित की हुई अनेक प्राचीन प्रतिमाओं को यहाँ इन्होने विराजमान किया। अपने द्वारा एकत्रित प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों को सुरक्षित किया।

१९२७ सं०, १८७० ई०

महादेवा के अपने नए मकान (वर्तमान देवाश्रम) के ऊपर तीर्थङ्कर शीतलनाथ का एक चैत्यालय स्थापित किया। यहीं वे रहने लगे।

१९३० सं०, १८७३ ई०

बाबू प्रभु दास जी के छोटे भाई बाबू जिनेश्वर दास जी मुकदमें आदि का कार्य देखा करते थे। इनको कोई सन्तान नहीं थी।

१९३१ सं०, १८७४ ई०

बाबू प्रभुदास जी के जिम्में श्री सम्मेद शिखर का प्रथम प्रबंध समिति का कार्यभार ग्वालियर गद्दी के ही भट्टारक राजेन्द्र भूषण ने दिया। इनके पुत्र चन्द्रकुमार जी का विवाह मुंशीखाना आरा के श्री बच्चू लाल जैन की चचेरी बहन चेंगन बीबी से हुआ। चेंगन बीबी का बड़ा तैल चित्र भवन में सुशोभित है। बा० प्रभुदास जी, उनके भाइयों, उनके पुत्र चन्द्रकुमार जी तथा द्वितीय पौत्र धर्मकुमार जी के चित्र उपलब्ध नहीं हुए हैं।

१९३३ सं०, १८७७ ई०

बाबू प्रभुदास जी का देहावसान ६४ वर्ष की आयु में हुआ।

१९३४ सं०, १८७७ ई०

पुत्र चन्द्रकुमार जी और पुत्र वधु चेंगन बीबी से यशस्वी और देव समान प्रथम पौत्र बाबू देवकुमार जी का जन्म ७ मार्च १८७७ में हुआ।

१९४० सं०, १८८३ ई०

पुत्र चन्द्रकुमार जी से अत्यन्त सुन्दर और गौरवर्ण द्वितीय पौत्र धर्मकुमार जी का जन्म हुआ। चन्द्रकुमार जी के दो पुत्रियां भी थी। बड़की बीबी और छोटकी बीबी। बड़की बीबी नेम सुन्दरी जी का विवाह दानवीर बाबू हरप्रसाद जी के एक मात्र पुत्र बाबू धनेन्द्र दास से और छोटकी बीबी प्रेम सुन्दरी जी का आरा फर्म राजेन्द्र कुमार कुँवर जी के मलिक बाबू कुँवर जी से हुआ।

१९४४ सं०, १८८७ ई०

बाबू प्रभुदास जी के पुत्र चन्द्रकुमार जी का देहावसान हुआ। उस समय

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बाबू देवकुमार जी दस वर्ष के थे। स्टेट-सरकारी प्रबंध (कोर्ट औफ वार्ड) में आठ वर्षों के लिए चला गया।

१९५२ सं०, १८९५ ई०

बाबू प्रभुदास जी के पौत्र बाबू देवकुमार जी ने चन्द्रावती बनारस के चन्द्रप्रभु भगवान के मन्दिर की प्रतिष्ठा की और धर्मशाला निर्माण कार्य पूरा किया। उन्हें कोर्ट औफ वार्ड यानी सरकारी प्रबध से स्टेट वापस मिल गया था।

१९५६ सं०, १८९९ ई०

द्वितीय पौत्र बाबू धर्मकुमार जी का विवाह मथुरा के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी राजनेता और केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य श्री नारायण दास की पुत्री चन्दा बाईजी से हुआ। धर्मकुमार जी बी० ए० के मेघावी विद्यार्थी थे। संस्कृत की शिक्षा पं० लालाराम जी शास्त्री ने दी थी जिसे वह धारा प्रबाह बोलते थे।

१९५७ सं०, १९०० ई०

आरा में प्लेग की माहमारी हुई। इसी बीमारी से धर्मकुमार जी का देहावसान श्री सम्मेदशिखर की यात्रा के उपरान्त १७ वर्ष की अल्प आयु में गिरीडीह में हुआ। ज्येष्ठ भ्राता इस वज्रपात को झेलने के क्रम में सन्यासी हो गए। कालक्रम में चन्दाबाई जी पढ़-लिखकर ई० १९२१ में श्री जैन बाला विश्राम की संस्थापिकी माँ श्री ब्र० चन्दा बाई देशभर में प्रसिद्ध हुई। आश्रम को देखने, महात्मागांधी कस्तूरबा, मालवीय जी, डा० राजेन्द्र प्रसाद, नेहरुजी, विनोबा भावे आदि अनेकानेक नेता इस महान् संस्था में बराबर आते रहे। समाज के सरहुकमचंद, शीतल प्रसाद जी, वैरिस्टर चम्पतराँय जी वगैरह भी सभी नेता आए।

१९५८ सं०, १९०१ ई०

बाब प्रभुदास के प्रपौत्र बाबू देवकुमार जी के प्रथम पुत्र बाबू निर्मलकुमार का जन्म २८ जनवरी १९०१ ई० की भोर में हुआ।

१९६० सं०, १९०३ ई०

बाबू प्रभुदास जी के द्वितीय प्रपौत्र तथा बाबू देवकुमार जी के द्वितीय पुत्र श्री चक्रेश्वर कुमार जी का जन्म हुआ।

बाबू प्रभुदास जी की धर्मशाला में देवकुमार जी ने बनारस में स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थापना किया। पुज्य भट्टारक हर्ष कीर्ति जी महाराज के द्वारा बाबू प्रभुदास जी के हस्तलिखित ग्रन्थों के भंडार को तथा स्वयं पूज्य भट्टारक जी ने बक्स भरे अपने भंडार के द्वारा बाबू देवकुमार जी ने समाजवालों के सम्मुख श्री

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शान्तिप्रभु के मन्दिर पर जैन पुस्तकालय की स्थापना कराई, आरा जैन समाज की ओर से भी कुछ ग्रन्थ अर्पित हुए।

१९६५ सं०, १९०८ ई०

पौत्र बाबू देवकुमार जी का ३१ वर्ष की अल्पआयु में साढ़ेतीन माह की बीमारी के बाद कलकत्ते में देहावसान हो गया। इसके पूर्व उन्होंने दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान शास्त्रोद्धार के लिए अभूतपूर्व कार्य किया। एक लाख की जमींदारी का दान, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का सभापतित्व एवं जैन गजट का सम्पादन करके अपूर्व यश अर्पित किया।

१९७५ सं०, १९१८ ई०

कौशाम्बी मन्दिर का निर्माण बाबू प्रभुदास जी ने सं० १९१९ सं० १८६२ ई० में आरम्भ कराया था। तदुपरांत उनके पुत्र बाबू चन्द्र कुमार और उनके पुत्र बाबू देवकुमार ने निर्माण कार्य पूरा कराया। प्रतिष्ठा कराने के पूर्व ही दोनों अपने अपने समय में बीमार पड़े और लघुवय में कालकवलित हो गए थे। देवकुमार जी के पुत्र बाबू निर्मल कुमार जी ने ई० सन् १९१८ में प्रतिष्ठा के दौरान बहुत अस्वस्थ होकर भी पूजा प्रतिष्ठा पूरी कराई थी। पत्नि श्रीमती शांति देवी सहित इन्द्र–इन्द्राणी दोनों बने थे। ब्र० पंडिता चंदाबाई जी ने पारिवारिक बाग धनुपरा अन्तर्गत श्री जैन बाला विश्राम की स्थापना की। ई० १९३२ में बाबू निर्मल कुमार जी और चक्रेश्वर कुमार जी ने बाग और बंगला दान पत्र लिखकर रजिस्ट्री किया।

१९८९ सं०, १९३२ ई०

बाबू प्रभुदास की पुत्रवधु चेंगन बीबी का देहावसान ७४ वर्ष की आयु में हुआ ब्र० चन्दा बाई एवं श्री देवकुमार जी की पत्नि अनूपमाला देवी ने तथा उनकी चेंगन बीबी की पुत्री नेमिसुन्दरी जी ने समाधिमरण के नियम् दिलाए। उनका मृत्यु महोत्सव हुआ। वे अपने पीछे दोनों पौत्रों, पौत्रबन्धुओं तथा पुत्रों–पुत्रियों का भरा पूरा परिवार छोड़कर गई।

१ दोनों पौत्रों बा० निर्मल कुमार चक्रेश्वर कुमार ने सामाज व्यापार, जमीन्दारी उद्योग तथा राजनीति के क्षेत्रों में भरपूर सफलता प्राप्त की थी और परिवार की कीर्त्ति का बिहार प्रान्त तथा प्रान्त के बाहर संवर्धन किया था। कृषि और चीनी उद्योग के क्षेत्र में बिहार प्रान्त में अग्रणी स्थान प्राप्त किया था। सिद्धान्त भवन, श्री जैन बाला विश्राम और देवाश्रम कोठी की नई भव्य इमारतों के साथ साथ यहाँ के कार्य कलापों के द्वारा बिहार प्रदेश में धार्मिक, शैक्षणिक और व्यापारिक क्रियाओं के केन्द्रबिन्दु तो बन ही चुके थे, राजनीति में भी डा० राजेन्द्र प्रसाद, डा० अनुग्रहनारायण सिंह, बा० जगजीवन राम, श्री बलिराम भगत और श्री अब्दुल कयूम

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अन्सारी से दोनों भाइयों का अपना घनिष्ठ सम्बन्ध बना हुआ था। देश के बड़े से बड़े सभी नेता महात्मा गांधी, पं० नेहरु, सुभाष बोस, विनोबा भावे आदि आरा आने पर इनको आतिथ्य स्वीकार करते थे। देश के स्वतंत्रता संग्राम में इनका सहयोग महत्वपूर्ण माना जाता था। बा० निर्मल कुमार जी भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के अध्यक्ष तथा भारत के वाइसराय के काउन्सिल आफ स्टेट के माननीय सदस्य चुन लिए गए थे। दोनों पौत्र बिहार चेम्बर ऑफ कामर्स के अध्यक्ष हुए थे। फिर चक्रेश्वर कुमार जी कान्ग्रेस टिकट पर बिहार विधान सभा के सदस्य हुए और अल्यूम्युनीयम उत्पादन का भारत में आरम्भ का श्रेय दोनों भाइयों को है।

२ ब्र० पं० चन्दाबाई जी ने बाला विश्राम के द्वारा महिला शिक्षा और जागृति के क्षेत्र में तथा भारतवर्ष श्री जैन महिला परिषद की संचालन करके और श्री जैन महिलादर्श का सफल सम्पादन करके अपूर्वयश सम्मान प्राप्त किया।

३ बाबू निर्मल कुमार चक्रेश्वर जी द्वारा श्री जैन सिद्धान्त के भवन को दी गई अमूल्य सेवाओं के उपलक्ष में दिनांक २८-३-७७ कोश्री शांति नाथ प्रभु मंदिर पर श्री जैन सिद्धान्त भवन के तत्वाधान में श्री निर्मल कुमार चक्रेश्वर कुमार कला दीर्घा का भव्य उद्घाटन बिहार के तत्कालीन लोकायुक्त श्रीधर वासुदेव सोहनी आई० सी० एस० के द्वारा सम्पन्न हुआ। इसकी स्मृति में मार्बल पत्थर पर स्मृति यह लगा हुआ है। अंग्रेजी के यह एन० के० सी० के० जैन गैलरी ऑफ आर्ट कलचर के नाम से प्रसिद्ध है।

जैन दर्शन में मन की अवधारणा

—राजीव प्रचंडिया एडवोकेट

यह सत्य सिद्ध है कि वर्तमान युग मनोवैज्ञानिक युग है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहाँ मनोविज्ञान की आज अपेक्षा न हो। वर्तमान जीवन विकार तनाव अर्थात् असमय अस्थिर—अस्पष्ट होने के फलस्वरूप वह अनेक आपदाओं—वेदनाओं से ग्रसित-व्यथित है, उसकी प्रत्येक क्रिया—प्रक्रिया और प्रतिक्रिया में भय परिलक्षित है, आवेश—आक्रोश समाविष्ट है। मन के विज्ञान-तन्त्र पर जब मनन—चिन्तन किया जाता है तो अनगिनत समस्याओं से संपृक्त वही व्यक्ति निश्चय ही अपने को इन समस्याओं से अलग—थलग पाता है। वास्तव में जो विज्ञान अर्थात् विशिष्ट ज्ञान आदर्श वादिता से परे यथार्थता से अनुप्राणित जीव के चेतन अथवा अचेतन मन के समस्त व्यवहारों—क्रियाओं का सम्यक् अध्ययन—विश्लेषण अर्थात् उसके रूप—स्वरूप का उद्घाटन करने में सक्षम हो, वही वस्तुतः मनोविज्ञान है। जैन मनोविज्ञान किसी प्रयोगशालायी निकष पर नहीं आगम मनीषियों की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि पर अवस्थित है।

प्रस्तुत निबन्ध में जैनदर्शन में मन की अवधारण' नामक सामयिक एवं परम उपयोगी तथा व्यापक विषय पर चर्चा करना हमारा मूल अभिप्रेत है।

जैनदर्शन में व्यक्ति-विशेष की अपेक्षा उसमें व्यञ्जित गुणों की स्तुति वंदना की मान्यता स्पष्टतः परिलक्षित है। गुणों के व्याज से ही व्यक्ति का स्मरण-चितवन किया जाता है। शरीर तो सर्वथा वंदना के अयोग्य है। क्योंकि यहाँ किसी कार्य

का कर्त्ता परकीय शक्ति–सतादि को नहीं माना गया है। अपने-अपने कर्मानुसार प्राणी स्वयं कर्त्ता और उसका भोक्ता होता है। कोई भी प्राणी किसी अखण्डसत्ता का अंश रूप नहीं अपितु अपने में वह पूर्ण तथा स्वतन्त्र है। जैनधर्म का आद्य मन्त्र 'णमोकार मन्त्र' जिसमें पंचपरिमेष्ठि अर्थात् अरिहन्त सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, तथा साधु हैं, उपर्युक्त कथ्य की पुष्टि करता है। ये व्यक्ति नहीं अपितु साक्षात परमपद हैं जो समस्त कल्याणकारी गुणों के आगार हैं, पुञ्ज हैं, अस्तु पूज्य हैं, उपादेय हैं।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में णमोकार मंत्र पर यदि मनन किया जाय तो इस प्रश्न का उठना सहज तथा अनिवार्य है कि इसका मन पर क्या प्रभाव पड़ता है? दृष्ट और अदृष्ट दो प्रकार की क्रियाओं में व्यक्ति का जीवन संचरण होता है। दृष्ट क्रियाओं का सीधा सम्बन्ध मन की चैतन्य अवस्था से रहा करता है जब कि दृष्ट क्रियाएँ मन की अचेतन अवस्था का परिणाम है। वास्तव में मनुष्य की ये समस्त क्रियाएँ उसकी मनोवृत्तियाँ कहलाती हैं। मनोवृति के मुख्यतः तीनरूप जैनदर्शन में निरूपित हैं—

१ ज्ञान　　　　२ वेदना　　　　३ क्रिया।

इन तीनों का ही एक दूसरे से शास्वत तथा प्रगाढ़ सम्बन्ध है क्योंकि जो कुछ ज्ञान जीव को होता है उसके साथ–साथ वेदना और क्रियात्मक भाव भी स्थिर होने लगते हैं।

ऐसे मन्त्र का क्षण–प्रतिक्षण स्मरण-चिन्तवन और ध्यान करने-कराने से ये मनोवृतियाँ पल्लवित-विकसित होती हैं जिनमें प्राणी का अन्तर्मन प्रवल होता है और संकल्प शक्ति स्थिर रहती है। निश्चय ही यह महान्त्र मानसिक उद्वेग वासना एवं विकार को दूर कर मानव जीवन में सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र को त्रिवेणी बहाकर उसमें सत्-चित्-आनन्द का समन्वय रूप प्रशस्त्र करने में परम सिद्ध एवं सहायक है।

जैनदर्शन आत्मवादी दर्शन है। यहाँ आत्मा के अस्तित्व उसके स्वरूप, अवस्थादि पर गहराई के साथ सम्यक चिन्तन किया गया है। जैन दर्शन में आत्मा को अनन्त ज्ञान दर्शन मय माना गया है। इसके अमूर्तिक अर्थात् वर्ण-गन्ध-रस स्पर्श आदि मूर्ति का अभाव होने के कारण साक्षात् दर्शन-उपलब्धि हेतु जीव को 'इन्द्रियों का अवलम्बन अपेक्षित रहता है। वास्तव में इन्द्रियाँ आत्मा के अस्तित्व की परिचायक हैं तथा आत्मा के द्वारा होनेवाले संवेदन का साधन भी। इन्द्रियाँ पाँच भागों में विभक्त हैं १ श्रोत्र २ चक्षु ३ घ्राण ४ रसना ५ स्पर्शन। पाँचों इन्द्रियाँ दो-दो प्रकार की स्थिर की गई हैं—एक द्रव्येन्द्रिय और दूसरी भावेन्द्रिय। इन्द्रियों का बाह्य पौद्गलिक रूप द्रव्येन्द्रिय तथा आन्तरिक क्रिया–शक्ति अर्थात् आन्तरिक चिन्मय रूप भावेन्द्रिय कहलाती है। इनके पुनः भेद–प्रभेद परिलक्षित हैं। द्रव्येन्द्रिय, 'निवृति'

Ac. Gunratnasuri MS　　　　　　　　　　　　Jin Gun Aradhak Trust

और 'उपकरण' तथा भावेन्द्रिय 'लब्धि' और 'उपयोग' दो भागों में प्रभेदित हैं। चार इन्द्रियाँ–श्रोत घ्राण रसना और स्पर्शन वाह्य पदार्थों के अर्थात् अपने–अपने विषय में के संसर्ग से उत्तेजित होकर अपने ग्राह्य विषय को ग्रहण करतो हैं किन्तु 'चक्षु' इन्द्रिय संसर्ग की अपेक्षा प्रकाश एव रंगादि के माध्यम से ही 'संवेदन' करती है। इन इन्द्रियों के माध्यम से जीव विषयों में सदा प्रमत्त रहता है। इन्द्रियों के अनुकूल विषयों की पुन: प्राप्ति की पृवति जो 'इच्छा' कहलाती है, आसक्ति या राग का रूप ग्रहण करती है और इसकी विपरीत स्थिति घ्राणया, द्वेष को धारण करती है। इन राग–द्वेषात्मक भावों–वृत्तियों से आत्म तत्व का वास्तबिक स्वरूप अर्थात् समत्व रूप सदा प्रद्दान्न रहता है।

इन्द्रियों की भाँति मन भी आत्मा के सवेदन का साधान है। वह आत्म तत्त्व के उत्कर्ष–अपकर्ष का प्रधान कारण बनता है। यह मन इन्द्रिय नहीं अपितु अनिन्द्रिय अथवा 'नोइन्द्रिय' कहलाता है। इन्द्रियाँ मात्र अपने–अपने विषयों में ही संश्लिष्ट रहती हैं जब कि मन सर्वार्थग्राहक होता है अर्थात वहमूर्त-अमूर्त समस्त पदार्थों में प्रवृति करता है। इन्द्रियों की भाँति इसके विषय–क्षेत्र की कोई मर्यादा सीमा नहीं होती है। मन का विश्लेषण करते हुए जैनदर्शन में मन को दो रूपों में विभक्त किया है एक पौडगलिक अर्थात् द्रव्यमन और दूसरा चैतन्यमन अर्थात् भावमन। मनोवर्गणा के पुद्गलों से विनिर्भित तत्त्व-विशेष द्रव्यमन तथा आत्म तत्त्व की चिन्तन–मनन रूप शक्ति वस्तुत: भाव मन कहलाता है। ये दोनों ही मन अपने चिन्तन का कार्य सम्पादित करते हैं। जैनदर्शन में मन के आधार पर ही प्राणी को दो भागों में विभाजित किया है एक अमनस्क प्राणी अर्थात् असंज्ञी और समनस्क प्राणी अर्थात् संज्ञी। समनस्क अमनस्क प्राणियों के रूप–स्वरूप का अध्ययन करने पर यह सहज में ही कहा जा सकता है जिनमें ईहा, अपोह, मार्गणा गवेषणा, चिन्ता और विमर्श करने की शक्ति–सामर्थ्य होती है, जीव संज्ञी अर्थात समनस्क और जिनमें इनका अभाव होता है वस्तुत: वे असंज्ञी अर्थात् अमनस्क की कोटि में आते हैं। जैनागम के अनुसार एक इन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रियों तक के जीव अमनस्क तथा पंचेन्द्रिय जीव समनस्क, अमनस्क दोनों होते हैं। यह निश्चत है कि भाव मन, आत्मा की ही एक शक्ति होने के कारण इन सभी प्राणियों में सदा विद्यमान रहता है किन्तु द्रव्य मन के अभाव में इसका उपयोग असम्भव है। मन जिन जिन विषयों में प्रमत्त रहता है, वासनाएँ उतने ही रूपों में प्रकट–प्रबल होती जाती हैं। निश्चय ही मन के अप्रमत्त अर्थात् जाग्रत रहने पर वही' वासनाएँ क्षीण एवं समाप्त हो जाती हैं। मन की जो शुभाशुभ प्रवृत्ति अर्थात् राग-द्वेषात्मक भाव है वे बन्धन के मूल कारण माने गए हैं। वास्तव मे मुक्ति और बन्धन का सम्बन्ध प्राणी के मन से ही रहता है। मन के [illegible] आधार को समझ लेने पर प्राणी निश्चय ही मुक्ति पथ पर अग्रसर

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

होता है अन्यथा इन्द्रियों और मन के विषयों में आसक्त प्राणी जन्म-मरण के चक्र में फँसकर विषयासक्त से अवश, दीन लज्जित और करूणा जनक स्थिति को प्राप्त होता है।

जैनागम में मन की चार अवस्थाएँ निरूपित हैं—

१ विक्षिप्त मन
२ यातायात मन
३ श्लिष्ट मन
४ सुलीन मन

विक्षिप्त मन, मन की विषयासक्त और सकल्प-विकल्प युक्त विक्षुब्ध अवस्था है। यह प्रमत्तता की अवस्था भी कहलाती है। यातायात मन में मन कभी अन्तर्मुख तो कभी बहिर्मुख की ओर प्रेरित होती है। मन की यह प्रमत्ता प्रमत्त अवस्था है। श्लिष्ट मन चित की अप्रमत्त अवस्था है। इसमें चित्त पूर्ण रुपेण विषयों से रहित तो नहीं होता किन्तु अशुभ भावों का पूर्ण पराभव होता है। यह साधक की आनन्द मय अवस्था होती है। सुलीन मन अवस्था तक आते-आते साधक की समस्तचित वृतियाँ समाप्त हो जाती हैं। साधक शुभ अशुभ भावों से ऊपर उठ कर स्वयं शुद्ध ज्ञाता दृष्टा मय हो जाता है। साधक की यह परमानन्द या समाधि की अवस्था होती है। इस प्रकार जीव के विकास ह्रास में मन का योगदान, उसकी भूमिका कितनी महत्त्वपूर्ण है, यह प्रत्यक्ष परिलक्षित है। निश्चय ही मनो निग्रह से उपर्युक्त पाँचों इन्द्रियाँ वशीभूत हो हो जाती हैं, विषय-वासनाओं का भी उन्मूलन होता है, चंचलता भी नष्ट होती है और आत्मा के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन होना भी होता है।

मनो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जैनधर्म में 'लेश्या' का जो तलस्पर्शी विवेचन विश्लेषण है वह वस्तुत: अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लेश्या-विचार में मानसिक वृतियों के वर्णों का, मन के विचारों का तथा उनके उद्गमस्थलादि का अध्ययन किया जाता है। 'लेश्या' जैनदर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है। आत्म-तत्त्व जिसके सहयोग से कर्म में लिप्त होता है वह लेश्या कहलाती है। साधारणत-लेश्या का अर्थ है मनोवृत्ति, विचार या तरंग। किन्तु आचार्यों ने कर्मश्लेष के कारण भूत शुभाशुभ परिणामों को ही लेश्या कहा हैं। उत्तराध्ययन की बृहत् वृत्ति में लेश्या का अर्थ आणविक आभा, कान्ति, प्रभा और छाया के रूप में किया है। मूलाराधना में लेश्या छाया पुद्गलों से प्रभावित होने वाले जीव परिणाम हैं। धवला में स्पष्ट वर्णन है कि आत्मा और कर्म का सम्बन्ध कराने वाली प्रवृति लेश्या है। सर्वार्थसिद्धि में कषायों के उदय से अनुरंजित मन, वचन व काय की प्रवृत्ति को लेश्या कहा है। इस प्रकार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लेश्या की अनेक परिभाषाएँ जैनागम में उल्लिखित हैं। जीव के मन में जिस प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार के वर्ण तथा उसी अनुरूप पुद्गल परमाणु उसकी आत्मा की ओर आकृष्ट होते है। शुभाशुभ विचारों के आधार पर ही जैनदर्शन में लेश्या को छह भागों में बाँटा गया है।

१ कृष्ण लेश्या २ नील लेश्या ३ कापोत लेश्या ४ तेजो लेश्या ५ पद्म लेश्या ६ शुक्ल लेश्या।

कृष्ण लेश्या वाले जीव की मनोवृत्ति निकृष्टतम होती है। उसके विचार अत्यन्त कठोर नृशंस, क्षुद्र एवं क्रूर आदि होते हैं। विवेक–विचार से रहित भोग–विलास में ही वह अपना जीवन यापन करता है।

नील लेश्या की कोटि में आने वाले जीव स्वार्थी होते हैं। उनमें ईर्ष्या, कराग्रह, अविद्या, निर्लज्जता, द्वेष, प्रमाद, रसलोलुपता, प्रकृति की क्षुद्रता और बिना विचारे कार्य करने की प्रवृत्ति होती है किन्तु यह लेश्या कृष्ण लेश्या की अपेक्षा श्रेष्ठ है क्योंकि इस जीव के विचार अपेक्षाकृत कुछ प्रशस्त होते हैं। कापोत लेश्या में आने वाले जीव की वाणी व आचरण में वक्रता होती है। वह अपने दुर्गुणों को प्रच्छन्न कर सद्गुणों को प्रकट करता है किन्तु नील लेश्या से उसके भाव–विचार कुछ अधिक विशुद्ध होते हैं। तेजो लेश्या वाला जीव पवित्र नम्र, दयालु, विनीत, इन्द्रिय-जयी तथा आत्मसाधना की आकांक्षा रखने वाला तथा अपने सुख की अपेक्षा दूसरों के प्रति उदारमना होता है। पद्म लेश्या वाले जीव की मनोवृत्ति धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान में विचरण करती है। इस कोटि का जीव संयमी, कषायों से विरक्त, मितभाषी, जितेन्द्रिय तथा सौम्य होता है। शुक्ल लेश्या वाला जीव समदर्शी, निर्विकल्प, ध्यानी, प्रशान्त अन्तः करण वाला, समिति–गुप्ति से युक्त, अशुभ प्रवृत्ति से दूर तथा वीतरागमय होता है।

उपर्युक्त विवेचनोपरान्त यह सहज में ही जाना जा सकता है कि इनभावों–विचारों का रंगों के साथ और रंगों का प्राणी जीवन के साथ कितना गहरा सम्बन्ध है? रंग हमारे शरीर तथा मानसिक विचारों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं? जैनशास्त्रों में लेश्या के सिद्धान्त द्वारा इसी प्रभाव की व्याख्या की गई है। रंगों में काला रंग मानवीय जीवन में असंयम, हिंसा, और क्रूरता, नीला रंग ईर्ष्या, असहिष्णुता, रस–लोलुपता और आसक्ति तथा कापोत रंग वक्रता कुटिलता और दृष्टिकोण का विपर्यवास उत्पन्न करता है। अरुणरंग मनुष्य में ऋजुता, नम्रता, और धर्म–प्रेम उत्पन्न करता है। पीला रंग मनुष्य में शान्ति, कषायों की अल्पता तथा इन्द्रिय विजय का भाव उत्पन्न करता है तथा श्वेत रंग मनुष्य में गहरी शान्ति और जितेन्द्रियता का भाव उत्पन्न करता है। इस प्रकार कृष्ण, नील और कापोत ये

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तीन रंग अशुद्ध है तथा इन रंगों से प्रभावित होनेवाली लेश्याएँ भी अशुभ–अप्रशस्त कोटि की मानी जाने के कारण इन्हें अधर्म लेश्या कहा गया है। ये सर्वथा त्याज्य हैं। तेजस, पद्म और शुक्ल ये तीन वर्ण शुभ है क्योंकि ये मनुष्य के विचारों पर अच्छा प्रभाव डालते हैं। ये उपादेय हैं।

निश्चय ही लेश्याओं ज्ञान–विज्ञान को जानसमझ कर प्रत्येक संसारी जीव अपने मन के विचारों को पवित्र–शुद्ध करता हुआ अर्थात् अशुभ से शुभ और शुभ से प्रशस्त शुभ की ओर उन्मुख होता हुआ अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है।

उपरअंकित मनोवैज्ञानिक विश्लेषण विवेचनोपरान्त यह सहज में ही कहा जा सकता है कि यह दर्शन परम वैज्ञानिक व्यवहारिक, तथा उपयोगी दर्शन है। इसमें व्यवहृत सिद्धान्त-नीति, आचारादि पक्ष के माध्यम से कोई भी जीव अपने मन को प्रभावित कर सकता है, आत्मा का विकास कर सकता है। यह दर्शन जीव के मन की चेतन–अवचेतन–अचेतन तीनों अवस्थाओं को सुसंस्कारित–परिष्कृत करने में सर्वदा सक्षम है। निश्चय ही इसके सिद्धान्तों में ऐसी विभुत शक्ति है जिसका सम्यक् ज्ञान–आचरण करने से व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्व सान्त होता है। नैतिक भावनाएँ तो प्रस्फुटित होती ही हैं साथ ही कुत्सित–भावनाओं, असंख्यात वासनाओं का भस्म भी होना होता है तदनन्तर प्राणी–प्राणी का मार्ग भी प्रशस्त अर्थात् मंगलमय होना होता है। जैनदर्शन ही पहला और अकेला ऐसा दर्शन है जो यह उद्घोषणा करता है कि व्यक्ति के अन्तरंग में परमात्मा बनने की शक्ति–क्षमता विद्यमान है। बस, आज अपेक्षा है तो उस सुप्त शक्तियों को जाग्रत करने की जिससे-पर का कल्याण हो सके। वास्तव में जैनदर्शन का मनोवैज्ञानिक पक्ष समस्त प्राणवंत जीवों के लिए परम उपयोगी एवं कल्यानकारी है।

सन्दर्भ ग्रन्थो की सूची—

१ दमण पाहुड़
२ षट्खण्डागम
३ तत्त्वार्थ सूत्र
४ सर्वार्थ सिद्धि
५ नन्दि सूत्र
६ योगशास्त्र, आचार्य हेमचन्द्र
७ मूलाराधना
८ धवलाजी
९ तत्त्वार्थ राजवार्तिक
१० अभिधान राजेन्द्र

मंगलकलश, ३९४, सर्वोदयनगर,
आगरारोड, अलीगढ़ (उ० प्र०)

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्री जैन सिद्धान्त भवन आरा
के ८७ वें वार्षिक प्रतिवेदन

श्रुत पंचमी के पावन पर्व एवं श्री जैन सिद्धान्त भवन आरा के ८७ वें वार्षिकोत्सव के शुभ अवसर पर हम आप सभी आगन्तुकों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

प्राचीन समय में जब ऋषि–मुनियों द्वारा दिये गये उपदेशों एवं शिक्षा को श्रवण भाव से ही पूर्ण रूपेण आत्मसात कर लिया जाता था उस समय गुरू एवं शिष्यों के मस्तिष्क पटल पर जिनवाणी टेप की तरह अंकित हो जाया करती थी।

किन्तु समय के प्रभाव से शिष्यों की स्मरण शक्ति क्षीण होती गई और ऐसी परिस्थिति में जिनवाणी के संरक्षण के लिए इसे लिपि बद्ध करने की आवश्यकता महसूश की गई। अतएव श्रुत परम्परा के अन्तिम आचार्य धरसेन जी महाराज ने तत्कालीन दो प्रबुद्ध मुनिवरों पुष्पदन्त एवं भूतबलि को प्रशिक्षित कर षट्खण्डागाम को लिपिबद्ध करने का कार्य प्रारम्भ किया। आचार्य भूतबलि ने आचार्य पुष्पदन्त के तत् पश्चात् इसे लिपिबद्ध कर आज ही के दिन इस ग्रन्थ को पूरा किया।

आज से लगभग १९०० वर्ष पूर्व इसी पावन पर्व के दिन ग्रन्थ के पूर्ण होने की खुशी में इस ग्रन्थ एवं जय धवला टीका की पूजा, आरती एवं श्रुत स्कन्धयंत्र के पूजन, भजन, भाषण आदि धुमधाम से मनाए जाते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्री जैन सिद्धान्त भवन ग्रन्थागार की स्थापना सरस्वती के उपासक, जैन समाज के प्रतिष्ठित एवं आदरणीय राजर्षि देवकुमार जी ने आज से ८७ वर्ष पूर्व सन् १९०३ ई० में की।

इन्होंने अपने पूज्य पितामह पंडित प्रवर बाबू प्रभुदास जी द्वारा कड़ी मेहनत से एकत्रित हस्तलिखित ग्रन्थों के भण्डार को जिसमें बाबू प्रभुदास जी द्वारा हस्तलिखित काव्यग्रन्थ दुधारस कथा भी उपलब्ध हुआ है तथा पूज्य भट्टारक हर्ष कीर्ति जी महाराज ने तो बक्सभर अपने शास्त्र भण्डार भवन को अर्पित कर दिया।

राजर्षि बाबू देवकुमार जी द्वारा संस्थापित यह विशाल धार्मिक ग्रन्थों का ग्रन्थागार आरा नगर के मध्य में स्थित है, जो केवल आरा जिला के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनागम विषयों पर शोध कार्य हेतु अनुपम भण्डार हैं।

इस ग्रन्थागार में संरक्षित हस्तलिखित ताड़पत्रिय ग्रन्थों के विशाल संग्रह को एकत्रित करने हेतु बाबू देवकुमार जी ने अपना तन-मन-धन तीनों ही अर्पित कर दिया। अपने अल्प जीवन काल में इन्होंने जैन समाज को जो अमूल्य निधि प्रदान की है इसे सुरक्षित रखने का दायित्व अपने अन्तिम सन्देश में सम्पूर्ण समाज को दिया। हम सभी का यह परम कर्त्तव्य है कि इसकी सेवा तन, मन, धन से करें।

श्री जैन सिद्धान्त भवन ग्रन्थागार सम्पूर्ण भारत वर्ष के विद्वानों, धर्म प्रेमीयों मुनिवरों को ग्रन्थों के माध्यम से मार्ग दर्शन करा रहा है। शोधार्थी शोध कार्यों के लिए ग्रन्थागार के ग्रन्थों का उपयोग कर लाभान्वित हो रहे हैं।

श्री जैन सिद्धान्त भवन ग्रन्थागार में लगभग ११, ५०० छपी हिन्दी, बंगला, कन्नड़ आदि भाषाओं कि पुस्तकें संग्रहित हैं और प्रति वर्ष इनकी संख्या में वृद्धि हो रही है। इस तरह अँग्रेजी की छपी पुस्तकों की संख्या ५, ५०० हस्तलिखित ग्रन्थों की संख्या ६, ६०० एवं ताड़पत्रिय ग्रन्थों की संख्या १७००० है। इस ग्रन्थागार में ६०-६५ जैनागम विषयों से सम्बन्धित विभिन्न भाषाओं की पत्र पत्रिकाएँ श्री जैन सिद्धान्त भास्कर के परिवर्त्तन में आती हैं जिन्हें हम प्रति वर्ष जिल्द मढ़वाकर रखते हैं मैं धर्म प्रेमी बन्धुओं से कहना चाहूँगा कि वे इसको अध्ययन कर पूर्ण लाभ उठावें।

श्री जैन सिद्धान्त भवन ग्रन्थागार के अन्तर्गत प्रकाशन विभाग द्वारा "श्री जैन सिद्धान्त भास्कर" शोध प्रत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष दो भागों में जून एवं दिसम्बर में किया जाता है।

गत् वर्ष में श्री जैन सिद्धान्त भवन ग्रन्थावली का प्रकाशन कर पू० आचार्य

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कुन्थुसागर जी महाराज के कर कमलों से उन ग्रन्थों का उद्घाटन हो चुका है। इस वर्ष "सचित्र जैन रामायण" का प्रकाशन किया जा रहा है।

श्री जैन सिद्धान्त भवन—ग्रन्थागार आरा नगर के मध्य में स्थित मात्र ग्रन्थागार ही नहीं अपितु विभिन्न सांस्कृतिक गति विधियों का केन्द्र बिन्दु है। इस ग्रन्थागार के विशाल भवन में श्रुत पंचमी, कवि गोष्ठी, मुनिवरों के उपदेश शास्त्र प्रवचन अनेकों प्रकार की धार्मिक गोष्ठियाँ समय समय पर आयोजित की जाती हैं, जो आरा नगर के जन समुदाय को लाभान्वित करती है।

श्री जैन सिद्धान्त भवन के अन्तर्गत श्री देवकुमार जैन शोध संस्थान भी कार्यरत हैं जिसमें प्राकृत एवं जैनागम के विभिन्न विषयों पर शोधार्थी शोध कार्य करते हैं। यह संस्था सन १९७२ ई० से ही मगध विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त है। इस संस्थान के मानद निदेशक डा० राजाराम जी जैन एवं शोधाधिकारी डा० ऋषभचन्द जैन फौजदार जी है।

श्री जैन सिद्धान्त भवन, आरा के तत्वावधान में श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर पर श्री निर्मल कुमार चक्रेश्वर कुमार कला दीर्घा की स्थापना सन् १९ ई० में भ० महावीर के २५०० वें निर्वाणोत्सव के उपलक्ष्य में श्री श्रीधर वासुदेव सोहनी के कर कमलों द्वारा किए गये। देश के सभी भागों से आए हुए यात्री गण एवं अन्य विद्वान कला प्रेमी जन इसका निरन्तर लाभ उठा रहे हैं राजगृह में भी इसी कला प्रदर्शनी की एक शाखा वीर निर्वाण के सं० २५०० से ही लगातार अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है। देश विदेश के हजारों व्यक्ति जैन कला से सुपरिचित होकर उसका लाभ उठा रहे हैं।

इस आर्ट गैलरी की एक अमूल्य निधि सचित्र जैन रामायण "रामयशोरासायनरास" काव्य ग्रन्थ का प्रकाशन कार्य चल रहा है।

श्री जैन सिद्धान्त भवन ग्रन्थागार में पठन—पाठन हेतु ८० (अस्सी) पुस्तकें हिन्दी, अंग्रेजी एवं अन्य भाषाओं की निर्गत की गई।

श्री जैन सिद्धान्त भवन, में लगभग ८५० (आठ सौ पचास) धर्म प्रेमी बन्धु देश के विभिन्न भागों से आकर इस अपूर्व ग्रन्थागार के दर्शन किये तथा इसके सम्बन्ध में अत्यन्त शुभकामनाएँ प्रदर्शित की।

इस वर्ष लगभग ५०—६० पुस्तके क्रय की गईं। इस तरह क्रय की गई तथा दान स्वरूप प्राप्त पुस्तकों के माध्यम इनकी संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्रुत पंचमी का यह पर्व इस वर्ष तो और भी अत्यन्त रोचक एवं धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत प्रतीत होता है क्योंकि श्री भद्र कुन्दकुन्दा चार्य की द्विसहस्त्राब्दि समारोह का कार्यक्रम सम्पूर्ण भारत वर्ष में बड़े हर्षोल्लास के साथ विद्वत गोष्ठी, सांस्कृतिक कार्यक्रमों उनके द्वारा विरचित एवं सम्बन्धित पुस्तकों की प्रदर्शनी आयोजित कर मनाए जा रहे हैं।

इस वर्ष श्री जैन सिद्धान्त भवन, ग्रन्थागार के वार्षिकोत्सव एव श्रुत पच्चमी के अवसर पर हमलोगों ने भी उनके द्वारा किरचित एवं सम्बन्धित पुस्तकों की प्रदर्शनी आयोजित की है जो आपके समक्ष प्रदर्शित है। मैं महान् आचार्य कुन्दकुन्दा चार्य जी महाराज के चरण कमलों में अपनी श्रद्धा के फूल अर्पित करता हूँ जिन्होंने जैन वाङ्मय की गरिमा को अपनी रचनाओं के द्वारा गौरवान्वित किया।

अन्त में मैं उपस्थित सज्जनों माताओं एवं बहनों के प्रति अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य समय की इस धार्मिक कार्यक्रम को सफल बनाने में अपना सहयोग प्रदान किया। मैं इस पुस्तकालया के सभी पदाधिकारियों, भूतपूर्व पुस्तकालयाध्यक्षों संस्थापक तथा अन्य महत्वपूर्ण कार्य कर्ताओं के प्रति अपनी हार्दिक शुभकामानाएँ व्यक्त करता हूँ जिनके अथक परिश्रम के द्वारा यह ग्रन्थागार दिन-प्रतिदिन प्रगति की ओर अग्रसर होता जा रहा है।

मैं आशा करता हूँ कि आप सभी का सहयोग भविष्य में भी प्राप्त होता रहेगा।

सुबोध कुमार जैन
मानद् संचालक
श्री जैन सिद्धान्त भवन
देवाश्रम आरा

अजय कुमार जैन
मंत्री
श्री देवकुमार जैन ओरियेन्टल
रिसर्च इनिस्टच्यूट

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

साहित्य–समीक्षा

पं० भागचन्द्र जी "भागेन्दु", महावीराष्टक के अमर शिल्पी।

जिसप्रकार महाकवि निराला की प्रतिष्ठित कृति "सरस्वती वन्दना" बराबर उनकी स्मृति को लगभग हर साहित्यक आयोजनों में सजीव करती जा रही हैं, और सदा सभी संस्थाओं का इसी जन प्रिय वन्दना के गायन के उपरान्त कोई आयोजन आरम्भ होता है, जिसप्रकार पं० युगलकिशोर जी मुख्तार द्वारा रचित 'जिसने राग–द्वेष कामादिक जीते, सबजग जानलिया, सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया', से आरम्भ की हुई "मेरी भावना" जैन समाज में विश्व के सभी जैन जन–मानस को आन्दोलित कर दिया और घर–घर, मन्दिर–मन्दिर में यह सुप्रसिद्ध "मेरी भावना" लाखों कण्ठों से नित्य फूटती है, उसीप्रकार पं० भागचन्द जी द्वारा रचित 'महावीराष्टकस्तोत्र' संस्कृत में होते हुए भी सभी जैन उत्सवों में आबाल वृद्ध सभी के मुख से शुभारम्भ का गीत बन गया है।

"वन्देमातरम" बंकिम बा० का अमरगीत है, "जनमन गण, जन नायक जय हे, भारत भाग्य विधाता" गुरुदेव रविन्द्र का अमर गीत है जिनके द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को भारी शक्ति मिली और सदा ये गीत राष्ट्रीय गीत के रूप में गाये जाते रहे हैं। ऐसा सौभाग्य कतिपय कवियों को ही प्राप्त होता है।

वीर निर्वाण भारती ग्रन्थप्रकाशन समिति इन्दौर का नया प्रकाशन "महावीराष्टक के अमरशिल्पी, पं० भागचन्द जी," (मूल्य ५/–) जिसके सुयोग्य लेखक द्वय श्री मिश्री लाल जैन और राहुल जैन हैं, इन शोधकर्ताओं को हम धन्यवाद देते हैं कि इन्होंने पं० भागचन्द जी के विषय में इस नव प्रकाशित पुस्तिका के द्वारा उनकी जीवनी और उनके कृतित्व पर बिशद प्रकाश डाला है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इन महाकवि का चित्र भी खोज निकाला है। हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थों में से ही इन कवियों के चित्रों का आकार मान कर स्वीकार करना ही होगा। जैसे कि मीरा, तुलसीदास, सूरदास आदि के चित्र स्वीकार कर प्रचलित हुए हैं। उसी प्रकार जैन मनीषियों के चित्रों को स्वीकृति प्रदान करना ही चाहिए। मैंने इसी प्रकार श्री जैन सिद्धान्त भवन के शास्त्र भंडार से कतिपय प्राचीन आचार्यों के चित्रो के आधार पर कुछ चित्र तैयार कर राजगीर सरस्वती भवन की चित्र प्रदर्शनी में १०–१५ वर्ष पूर्व टंगवा दिए ताकि समय पाकर ये सर्व–स्वीकृत हो सकें। अब मैं उन्हें प्रकाशित कराने का प्रबंध कर रहा हूँ। इस विषय पर उसी समय मैंने स्व० डा० हीरालाल जैन से पत्राचार किया था और उन्होंने भी मेरी धारणा के आधार पर एक चित्र का सुझाव दिया था।

"भागचन्द्र पद संग्रह" के अतिरिक्त उनके द्वारा रचित अन्य कई भजनों के संग्रह भी इस प्रकाशन में मुद्रित कराकर हिन्दी कविता को समृद्ध किया है।

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

कविवर की बहुयामी योग्यता को प्रतिभासित करना ही ऐसे शोध लेखों का उद्देश्य होता है, जिससे सब प्रकार से लेख पठनीय बन जाता है। सभी प्रबुद्ध पाठकों को इस पुस्तक को मंगाकर पढ़ना चाहिए। —सु० कु०

पंडित जी के विषय में सूचनाएँ

१. गुनाजिला के ईसागढ़ के निवासी २. गद्यकार और कवि, ३. प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी के ज्ञाता ४. 'भाई जी' के नाम से विख्यात, ५. प्रमुख कर्मभूमियाँ-ईसागढ़, ग्वालियर, जयपुर ओर मन्दसौर ६. जन्म-सन् १८२० ७. निधन-सन् १८७६ ८. प्रमुखरचना काल सन् १८५०-५७, ९. प्रमुखरचना-महावीराष्टक १०. कविका उपलब्ध चित्र-संवत् १९ ९

पुस्तक का नाम — पल्लीवाल जैन जाति का इतिहास,
लेखक — डा० अनिल कुमार जैन,
प्रकाशक — श्री पल्लीवाल इतिहास प्रकाशन समिति १३२, स्कीम नं०-१०, अलवर (राज०)
मूल्य — २०/- बीस रुपये

—लेखक का यह अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयास है। जैन धर्मानुयायी जितने सम्प्रदाय और जाति के हैं, उनके विषय में योग्य जानकारियाँ खोज करने पर प्राप्त होती हैं। उनके द्वारा अनेक नयी नयी ऐतिहासिक एवं समाजिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। कुछ वर्ष पूर्व इसी प्रकार का इतिहास भरतपुर से भी प्रकाशित हुआ था। डा० जैन ने पिछले ५ वर्षों में और भी खोजपूर्ण सामग्रियाँ इक्ट्ठी की हैं। पं० कैलाशचन्द शास्त्री ने तमिल देश के शिलालेखों में प्रायः "पल्लीचन्दन" शब्द का उल्लेख पाया है और उनके अतिरिक्त श्री वी० पी० देसाई ने 'पल्ली" शब्द को जैन मन्दिर या जैन मठ या जैन संस्था का सूचक प्रकट किया है, और यह भी सिद्ध कर दिया है कि पल्ली तमिल भाषा के शब्दकोष में उनको कहते थे- 'जिन्होंने जंगल काटकर पहाड़ो की जड़ में छोटे गाँव बसाये थे।" इस प्रकार प्रस्तुत इतिहास में पल्ली-वालों की उत्पत्ति सिद्ध की गयी है। समय पाकर ये लोग आन्ध्र, गुजरात, महाराष्ट्र मध्यभारत, उत्तर प्रदेश व राजस्थान में आकर बस गए।

यह सभी सूचनाएँ बड़े काम की हैं। पल्लीवालों के विशेष व्यक्तियों तथा स्वतंत्रता सेनानियों के परिचय भी दिए गए हैं। उनके द्वारा इस जाति की विशेषता प्रकट होती है।

हम लेखक और प्रकाशक तथा आर्थिक रुप से सहायक सभी महानुभावों को इस प्रकाशन के लिए साधुवाद देता हूँ। —सु० कु०

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

—हमारे पूर्वज

—ब्र० पं० चन्दाबाईजी

पं० प्रभुदास, जिनेश्वरदास, मुनेश्वरदास ये तीनों ही हमारे ददिया ससुर थे। जिनेश्वर दास की कोई सन्तान नहीं थी। मुनेश्वरदास के एक लड़की थी जो विधवा होकर मर गयीं। प्रभुदासजी के दो विवाह हुए थे। पहले से एक लड़की हुई, उनका नाम कुन्दन बीबी थी। उनको एक लड़का हुआ बलदेवदास, उनके ही वंशज अब तक चले आ रहे है। जगदीपा बीबी आदि। उनसे और नाम मालूम हो सकते हैं।

प्रभुदास जी के दूसरे विवाह से एक पुत्र चन्द्र कुमार हुए। तीन लड़कियाँ, कन्नो बीबी, मन्नो बीबी, धन्नों बीबी हुयीं। तीनों पुत्रियों के सन्तान न थीं, धन्नो बीबी के एक पुत्र महावीर बाबू थें, उनके भी अब कोई नहीं है। चन्द्र कुमारजी का विवाह बच्चूलालजी की चचेरी बहन चेंगन बीबी से हुआ था, जोकि हमारी सास लगती थीं। यहीं रिश्ता बन्वा बाबू के कुटुम्ब से था। चन्द्र कुमारजी के दो लड़के हुए और दो पुत्रियाँ। श्री देव कुमारजी, श्री धर्मकुमारजी, नेमिसुन्दर और प्रेमसुन्दर श्री देव कुमारजी के दो पुत्र, श्री निर्मल कुमार और श्री चक्रेश्वर कुमार हुए।

प्रभुदासजी की तीनों पुत्रियों की शादी आरा में ही हुई थी, जिनका विवरण ऊपर लिखा हैं।

(उपर्युक्त लेख पूज्य दादीजी की एक पुरानी फाइल में दिनांक १–८–९० को मिला। श्रीमती जगदीपा बीबी का देहावसान दो वर्ष पूर्व ही हो चुका है इसलिए जिन जानकारियों का उल्लेख उपर्युक्त लेखमें जगदीपा बीबी से पूछने के लिए सुझाव दिया गया था वह सम्भव नहीं हो सका।)

—सु० कु०

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नेपाल में प्रथम जैन तीर्थस्थल के विकास की योजना

—पारसदास जैन

काठमाण्डू, भारत के पड़ोसी मित्र देश नेपाल में जैन परिषद द्वारा जैन धर्मस्थल के विकास की एक वृहद योजना बनाई गई है। जैन धर्म के१९वें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ तथा २१वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ नेपाल में ही जनकपुर (मिथिलानगरी) में पैदा हुए थे।

नेपाल में हजारों वर्ष पूर्व से श्रमण - संस्कृति का निरन्तर प्रभाव बना रहा है, जिसके चिह्न आज भी अनेक स्थानों पर परिलक्षित है। श्रीमद्भागवत के पांचवे स्कन्ध के अनुसार सम्राट भरत ने नेपाल के हरिहरक्षेत्र में काली गंडकी नदी के तट पर पुलहाश्रम में तपस्या की थी और सम्राट भरत जैन - धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे। नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री श्री एम० पी० कोइराला के अनुसार तो भगवान महावीर भी सम्भवतः नेपाल में ही पैदा हुए थे। उन्होंने अपनी पुस्तक ' महावीर के थिए ' (महावीर क्या थे ?) में लिखा है कि "परम्परागत इतिहास के अनुसार भगवान महावीर नेपाल की सीमा के साथ बिहार में वैशाली के क्षेत्रीय कुन्डलपुर स्थान पर पैदा हुए थे। कुण्डलपुर ग्राम वैशाली गणतंत्र में रिजुवालिका नदी के नट पर स्थित था। लेकिन इसकी स्थिति के विषय में पूर्ण निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। यह स्थान सम्भवतः भारत के साथ लगी नेपाली सीमा के क्षेत्र में था। यह बारा जिले के सिमरौंगढ़ क्षेत्र के समीप हो सकता है, जहाँ अब एक ध्वस्त शहर के अवशेष विद्यमान हैं। अगर यह बात इतिहास में सिद्ध होजाए तो अहिंसा और शान्ति के दो महापुरुषों-भगवान महावीर और बुद्ध की जन्मस्थली नेपाल होगी। शायद इसी परम्परा के अनुरूप नेपाल आज भी शान्ति क्षेत्र है।"

इसमें सन्देह नहीं कि भगवान महावीर के बाद भी नेपाल में जैन धर्म का व्यापक प्रभाव रहा है। भगवान महावीर के निर्वाण के बाद दूसरी शताब्दी में जब उत्तर भारत में भयंकर दुष्काल पड़ा और अनेक श्रुतज्ञानी साधु दक्षिण की तरफ चले गए, तब एक मान्यतानुसार श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु नेपाल की कन्दराओं में तपस्या कर रहे थे और स्थूलभद्र मुनि के नेतृत्व में पाँच सौ जैन मुनियों का संघ नेपाल आया उन्होंने और आचार्य भद्रबाहु से जैन धर्म का समस्त ज्ञान प्राप्त किया।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इसके बाद भी नेपाल में जैन धर्म के प्रसार के अनेक प्रमाण मिलते हैं। नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखागार में इस सन्दर्भ में अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, लेकिन ताड़पत्र पर लिखित ग्रन्थ 'प्रश्न व्याकरण' एक दुर्लभ ग्रन्थ है, जो विश्व में और कहीं प्राप्त नहीं। नेपाल में जैन परिषद ने इसकी प्रतियां कराके विभिन्न संस्थाओं को भेजी हैं। पशुपतिनाथ के पवित्र क्षेत्र में जैन तीर्थंकरों की दिगम्बर मूर्तियां विद्यमान हैं। वास्तव में नेपाल में योजनाबद्ध तरीके से वैज्ञानिक आधार पर खोज की आवश्यकता है। अगर यह कार्य किया जाए तो श्रमण-संस्कृति के प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हो जाएंगे।

नेपाल में सामाजिक संगठन के सम्बन्ध में जैन परिषद के अध्यक्ष श्री ज्योति कुमार बेंगाणी तथा महासचिव श्री प्रवीण चन्द मेहता ने कहा कि नेपाल में इस समय जैन मुख्यत: पूर्वी तथा मध्य क्षेत्रों में हैं। पश्चिमी क्षेत्र में इनकी संख्या कम है। मोरंग, सुनसारी, झापा, सप्तारी, परसा तथा काठमांडो के जिलों में स्थानीय जैन संगठन हैं। काठमांडू में भगवान महावीर जैन निकेतन के निर्माण की योजना के अन्तर्गत नक्साल क्षेत्र में एक मन्दिर, सभाकक्ष तथा अतिथिगृह का निर्माण हो रहा है। गोल्छा हाउस में एक चैत्यालय है। यहाँ जैनधर्म के सभी समुदायों के लोग मिलकर महावीर जयन्ती मनाते हैं तथा सभी एक संस्था जैन परिषद के सदस्य हैं।

—:o:—

मैंने ही ४–५ वर्ष पूर्व महाराजाधिराज नेपाल को इस विषय में निवेदन पत्र लिखा था, जिसे उन्होंने अपने सरकारी महकमा गूठी संस्थान, काठमाण्डू–को आवश्यक आदेश के साथ भेज दिया था। तदोपरान्त कार्य में प्रगति भी होती रही।

तभी मेरा सम्पर्क नेपाल के श्री हुलासचन्द जी गोल्छा से हुआ। उन्होंने हमारे प्रस्ताव पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और नेपाल के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री एम० पी० कोइराला से सम्पर्क स्थापित किया। गोल्छा जी द्वारा प्रेषित अन्तिम सूचना के अनुसार नेपाल सरकार ने जनकपुर में हमलोगों को जमीन देने का मन बना लिया है, परन्तु हाल की नेपाल में राजनैतिक उथल–पथल के कारण अभी आगे प्रगति रूकी हुई है।

मैं 'भास्कर' में इस विषय में आवश्यक पत्रों की नकलें पाठको की जानकारी के लिए प्रकाशित कर रहा हूँ।

—सुबोध कुमार जैन

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय शिक्षा निधि को प्रभु-परिवार द्वारा प्रदत्त सम्पत्ति

--सुबोध कुमार जैन

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थापना १२ जून १६०५ को हुई। इसी सभा में राजर्षि देवकुमार जी आरा ने अपने पूज्य पितामह पं० प्रभुदासजी द्वारा निर्मित प्रभुघाट, भदैनी गंगा किनारे स्थित विशाल रमणीक धर्मशाला एवं निवास स्थान को विद्यालय एव छात्रावास के लिये दिया।

यह स्थान तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की जन्म भूमि है और यहीं पर पंडित प्रवर प्रभुदासजी ने भट्टारक जिनेन्द्र भूषणजो द्वारा प्रेरणा पाकर यह विशाल धर्मशाला एवं तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का जिनालय निर्मित कराया था। यहाँ हर वर्ष हजारों तीर्थ यात्री पूजन बन्दन को जाते हैं।

सन् १९११-१२ की मुद्रित विद्यालय की रिपोर्ट के अनुसार बाबू निर्मल कुमार चक्रेश्वर कुमार जो आरा उस समय विद्यालय के संरक्षक थे, १५०० की लागत का एक छोटा मकान बनवाकर-छात्रावास के लिये तथा विद्यालय और भोजनालय के अति- रिक्त आस-पास की और भी एक मकान पाठशाला को दिया।

दुर्भाग्य से सन् १९४९ की भीषण बाढ़ में विद्यालय भवन का नीचे का पुस्त जो कि कट चुका था वह गंगाजी में विलीन हो गया और भवन का लगभग आधा भाग ही बचा जिसके ऊपर बाबू प्रभुदास जी द्वारा निर्मित जैन मन्दिर विराजमान है। इस प्राकृतिक प्रकोप से विद्यालय भवन के लिये और अधिक विस्तृत स्थान की खोज आरम्भ हुई।

सन् १९५४ में बाबू निर्मल कुमार चक्रेश्वर कुमार जी ने अपने पैतृक निवास स्थान प्रभुघाट पर स्थित विशाल धर्मशाला तथा कर्मचारियों के निवास आदि के लिए 'डीड आफ मैनेजमेन्ट' स्टाम्प पेपर पर लिखकर स्याद्वाद शिक्षा निधि के सुपुर्द कर दिया। इन जायदादों के ५ अदद दिखाये हुये हैं जो कि उनके डीड आफ मैनेजमेन्ट से स्पष्ट हो जाता है। इस डीड की प्रतिलिपि निम्न मुद्रित है। :—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

डीड आफ मैनेजमेन्ट

भारत सरकार

एक रुपया चार आना   एक रुपया चार आना

हम (१) बाबू निर्मल कुमार जैन और बाबू चक्रेश्वर कुमार जैन स्वर्गीय श्री देवकुमार जी जैन रईस व जमीन्दार आरा के पुत्र और उत्तराधिकारी हैं। मुहल्ला भदैनी शहर बनारस में हमारे पूर्वजों के मकानात नम्बरी BMIB 3-68 B, 3-72 B, 3-73 A, B. 3-76 और B 3-30 हैं और हम उनके ट्रस्टी हैं। इन मकानात में ४९ वर्ष से श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशी और उसका छात्रावास है और मकान न० B. 3-8 में श्रीजैन मन्दिर भी है इन सब मकानों पर हमारा नाम बतौर ट्रस्टी के दर्ज है। अब हम इन सब मकानों को श्री स्याद्वाद महाविद्यालय को सुपुर्द करते हैं। बी० ३-३० के नीचे का घाट भी हमारे पूर्वजों का बनाया है, वह भी हम श्री स्याद्वाद महाविद्यालय को सुपुर्द करते हैं।

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय के अधिकारियों का कर्त्तव्य होगा कि इन मकानों एवं घाट की यथा आवश्यकता मरम्मत कराते रहें और इनको अच्छी दशा में रखें व मकानात को विद्यालय अपने मसरफ में रखें व मरम्मत करावें वो टैक्स वगैरह समय पर देते रहें। मन्दिर जी की पूजन आदि के लिये हमारे पूर्वजों के ट्रस्ट से भी १२ (बारह) रुपया मासिक दिया जाता रहेगा। मन्दिर दिगम्बर बीस पन्थ आम्नाय का है और पूजा-पाठ वैसा ही होना चाहिये।

संयोगवश अगर किसी समय में श्री स्याद्वाद महाविद्यालय न रहे तो इन मकानों में कोई दूसरी दिगम्बर जैन संस्था हमारी या हमारे उत्तराधिकारियों की सम्मति से रह सकेगी। किसी भी हालत में श्री स्याद्वाद महाविद्यालय को बेचने या गिरवी वगैरह रखने का अधिकार नहीं होगा।

यह डीड आफ मैनेजमेन्ट इस लिए लिख दिया कि संनद रहे और समय पर काम आवे।

तहरीर फिता ३० माह दिसम्बर १९५४ (उन्नीस सौ चौवन ई०) गवाह :

(१) सुमति लाल जैन ३०-१२-५४

(२) राम लाल जैन ,,

गवाह—सुमति लाल जैन   रामलाल जैन   निर्मल कुमार जैन ३०-१२-५४

३०-१२-५४   ३०-१२-५४ डीड आफ मैनेजमेन्ट' | चक्रेश्वर कुमार जैन ३०-१२-५४

कातीब उलहरूफ शिवाजी लाल, हाल मोकाम महल्ला बाबू बाजार कस्बा आरा मजमून वासिका मोकीरान ने खुद पढ़कर समझबूझ लिया।

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

सर्वप्रथम संवतोल्लेख वाला शिलालेख

श्री भँवरलाल नाहटा ने 'कुशल निर्देश' मई १९९० के पृष्ठ २४ के अपने लेख में लिखा है—

'भगवान महावीर के ८४ वर्ष बाद वीर संवतोल्लेख वाला सर्व प्राचीन अभिलेख जो मज्झमिका नगरी का था अजमेर म्यूजियम में जाकर देख सकते हैं। मुनि संतबाल जी ने धर्म प्राण लोंकाशाह लेखमाला लिखते समय शंका समाधान हेतु पंडित बेचरदास जी को भेजकर भारत के सर्वोच्च तत्कालीन लिपि निष्णात रा० ब० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के पास से उनके अभिप्राय सहित सम्मति लाकर प्रमाणित करने से उसकी प्राचीनता भारत के सर्व प्रथम संवतोल्लेख वाले शिलालेख रूप में मान्य हुई थी।'

अनुप्रेक्षाएं । भावनाएँ

—मुनि महेन्द्र कुमार

हमारी मानसिक क्रियाओं के दो प्रकार हैं—चिंतन और दर्शन। इसलिए मानसिक एकाग्रता या ध्यान के भी दो रूप होते हैं—

१. दर्शन की एकाग्रता—प्रेक्षा।

२. चिंतन की एकाग्रता—अनुप्रेक्षा।

यह चिंतन की एकाग्रता सत्य की उपलब्धि का बहुत बड़ा साधन है। इसे बिचय ध्यान कहा जाता है। इसका तात्पर्य है बिचार प्रधान—चिंतन प्रधान ध्यान। बिखरे विचार ध्यान नहीं हो सकते। जब चिंतन एक दिशागामी बन जाता है, तब वह "अनुप्रेक्षा-ध्यान" कहलाता है।

—:o:—

Ac. Gunratnasuri MS

Jin Gun Aradhak Trust

(पं० प्रवर बाबु प्रभुदास जी स्मृति—लेख माला—१२

श्री जैन सिद्धान्त भवन की नींव १५० वर्ष पुरानी

—शान्ति जैन

कौशाम्बी की पुण्य भूमि पर १५० वर्ष पूर्व एक नवयुवक ने पहुँचकर वहाँ माटी को माथे पर लगाया और वह तीर्थंकर पद्मप्रभु की इस जन्म भूमि पर स्थापित प्राचीन मदिर जी के भग्न स्थान पर भाव विह्वल होता हुआ माथा टेककर रो पड़ा।

जब वह उठा, उसकी आँखो में आँसू थे और दिल में वेदना थी कि वत्स देश की यह राजधानी, जहाँ तीर्थंकर महावीर ने चन्दना सती का उद्धार किया और वहाँ के जन समुह को उपदेश दिया, जहाँ भगवान बुद्ध और आवीबक सम्प्रदाय के दर्शन का प्रसार हुआ। जहाँ वेद के मंत्रोच्चार भी हुए और जो वहाँ के शासक राजा उदयन की कीडा भूमि रही। जहाँ राजा उदयन ने अपने सुप्रसिद्ध वीणावादन के द्वारा देश के संगीताचार्यो को मुग्ध कर दिया करते थे और जिनके वीणा की झंकार सारे देश को संगीतमय किये हुए थी, वहीं भूमि आज खण्डहर होकर वीरान पड़ी हुई है।

आँसू लिये हुए वह व्यक्ति पं० प्रवर बाबू प्रभुदास जी थे। इन्हीं के पौत्र राजर्षि बाबु देव कुमार जी ने अपने पितामह की भाँति तीर्थों और शास्त्रों के उद्धार का व्रत लेकर आज से ६० वर्ष पूर्व अपने पूज्य पितामह के पद चिन्हों पर चलते हुए जीवन समाप्त किया।

बाबु प्रभु दास जी ने प्राचीन जैन हस्तलिखित ग्रन्थों की सुरक्षा और साथ-साथ तीर्थक्षेत्रों के जीर्णोद्धार के अतिरिक्त नये मंदिरों और धर्मशालाओं का निर्माण भी आरम्भ कर दिया था। वास्तव में श्री जैन सिद्धान्त भवन की नींव के लिए उन्होंने पहला पत्थर रखा था और उन्ही के द्वारा एकत्रित शास्त्र निधि को १६०३ ई० में उनके पौत्र बाबू देव कुमार जी ने श्री जैन सिद्धान्त भवन आरा की स्थापना के समय भवन को समर्पित करके प्राचीन ग्रन्थों के उद्धार के हेतु दक्षिण भारत की दुरूह यात्रा पर निकल चुके थे।

उत्तर भारत के प्राचीन धर्म स्थलों की यात्रा करके १५० वर्ष पूर्व बाबु प्रभुदास जी ने सैकड़ों प्राचीन ग्रन्थों को इकट्टा किया था और उनके पौत्र देवकुमार जी उसी क्रम के पूरा करने के लिए दक्षिण भारत की ओर निकल पड़े थे। जहाँ-

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जहाँ-जहाँ ये महापुरुष गये वहाँ-वहाँ की पंचायतों को प्राचीन ग्रन्थों के सुरक्षा के हेतु हर प्रकार से सहयोग देकर उत्साहित किया और इसीका परिणाम है कि हमारी धार्मिक सम्पदा जो नष्ट होती जारही थी और जिसे विदेशी विद्वान रद्दी कागज के भाव तौल कर खरीदकर भारत के बाहर ले जा रहे थे वह क्रम बहुत करके रुक गया और आज आरा में श्री जैन सिद्धान्तभवन जैसा विशाल ग्रन्थागार फल फूल रहा है जिसमें ६००० हस्तलिखित ग्रन्थ है। इनमें शोध पत्रिका के प्रकाशन का कार्य पिछले ६० बर्षो से लगातार चल रहा है।

धन्य हैं पं० प्रवर बाबु प्रभुदास जी और धन्य है उनके पौत्र राजर्षि बाबु देव कुमार जी और इसी क्रम में बाबु करोड़ी चन्द्र जी, कुमार देवेन्द्र, नेमी सागरजी वर्णी और बाबु निर्मल कुमार चक्रेश्वर कुमार जी। देवाश्रम की यह परम्परा चलती रहें। यह शुभकामना है।

—देवाश्रम, आरा।

आचार्य श्री अजित सागरजी महाराज का समाधि मरण

पूज्य श्री आचार्य श्री जून ८७ में आचार्य पद पर विराजमान हुए और परम पूज्य १०८ श्री आचार्य शान्ति सागर जी महाराज के पट्टाधीश बने (चतुर्थ)।

ता० ९ मई १९९० को सुबह ८ बजे ६४ वर्ष की आयु में सावया (उदयपुर) में उनका समाधिमरण हुआ।

आरा नगर की ओर से सादर विनम्र श्रद्धांजलि।

—सु० कु०

—:•:—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

THE JAINA ANTIQUARY

VOL. 43 JUNE – DEC. 1990 No. 1-2

"श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ।।"
[अकलंकदेव]

Editorial Board
Dr. Kastur Chand Kashliwal; Dr. Raja Ram Jain
Dr. Aditya Prachandiya; Dr. Shashikant
Dr. Rishabha Chandra Fouzdar

Published by
Ajay Kumar Jain, *Secretary*

SHRI DEVKUMAR JAIN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE

SHRI JAIN SIDDHANT BHAWAN

ARRAH BIHAR (INDIA)

ANNUAL SUBSCRIPTION

Inland Rs. 50/- Single Rs 25/
Foreign Rs. 80 Single Rs.40/

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Contents

Articles	Page No.
1. The Concept of Pramana in Jainism : An Introduction —Narendra Kumar Dash.	1
2. Samiti and its importance in life —Dr. M.S. Prachandia	11
3. Jain Mathematics —Prof. R. C. Gupta	
4. Brief Academic Biography of R. C. Gupta	17
5. Sri. D.K. Jain Oriental Research Institute, Arrah Annual Report. —Dr. Raja Ram Jain	18
6. 'Bawangaja' Tallest Statue in the world — M.M. Verma.	20
7. News and Reviews —Arvind Kumar.	23
8. Babu Prabhudas ji Memorial Articles-13 Founder of a Dynasty —J.K. Jain	26
9. Babu Prabhu Das Ji Memorial Articles-14 Chronological life History of Prabhudas jee —Pt. Brajbala Devi	30
10 Book Review —	

—:0:—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

The Concept of Pramana in Jainism : An Introduction

NARENDRA KUMAR DASH

The present paper entitled "The concept of *pramana* in Jainism : an introduction" consists of two parts. The former part bears a detailed study on the definitions of *pramana* given by various Jaina philosophers and the later part gives some elementary informations regarding *pratyaksa* and *paroksa*, the two *pramanas* accepted by the Jaina logicians.

In Jainism the source of valid knowledge (*prama*) is technically called *pramana* and *prama* means right knowledge or true cognition of object, but *prama* is always true.[2] Though almost all the schools of Indian philosophy admit that *prama* means, valid knowledge still they differ regarding the validity of knowledge. while the Naiyayikas regard true knowledge as true presentational knowledge (*tadvati tatprakara jnanam*),[3] the *Bhatta Mimamsakas* hold that truth of knowledge consists in non-contradictoriness; i. e. *prama* is defined as uncontradicted knowledge whose object was not known before (*anadhigata*).[4] On the other hand, the Jaina philosophers suggest

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

that judgmental knowledge which is other than doubt. error etc. is true knowledge. 5 Thus Hemachandra (12th Century A.D.), the great Jaina scholar suggests that right judgement about an object is called *prama*. 6

True knowledge (*prama*) is generated through *pramana* and therefore, *pramana* is usually rendered as : 'Instrument of kuowledge or 'Authoritative evidences'. The *Nyayavarttika* of Udyotakara defines it as : upalabdhi-hetuh *pramanam* i. e. *pramana* is a cause or condition of knowledge or cognition. The *pramana* is, so to say, the window of the mind, through which the objective world communicates its existence to us.

The word *pramana* is derived from the *rootvma* (n) means to measure' DF. II, 53 along with the prefix 'pra'. Then the suffix'(1) yu (t) is added here in the sense of *karana* and the -yu- portion of the suffix is changed to '-ana-' by P. VII. 1, 1. Thus we get the word *pramana* and the etimological sense of this very word suggests that this is a standard authority of right knowledge (*prama*).

All the systems of Indian philosophy agree with the view that *pramana* is the extraordinary means (*sadhana*) of right knowledge, but there are contradictory views regarding its characteristics. The *Nyaya Bhasya* of *Vatsyayana* (3rd-4th Century A.D) suggests that *pramana* is prior to that of *prama* and further he defines *pramana* as the cause of apprehension objects The Buddhists explain it as uncontradicted experience; 9 the *Mimamsakas* opine that *pramana* is a true knowledge of objects of which we have had no knowledge in the past. 10 The *Samkhya* system of philosophy adds only a mental modification to that of *Mimamsaka's* and calls it vrtti or *jnana*. 11

The Jaina philosophers not only define the term *pramana* with suitable definitions; but they have refuted the views of other scholars belonging to various systems of Indian philosophy to establish their superiority. Thus *Vadideva* suri (12th. Century A.D) in his *Syadvadaratnakara* explains the various definitions of *pramana* which

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

are discussed in the other schools of Indian philosophy and finally rejects their views in a upper hand. 12 The other jaina thinker Hemacandra (12th Century A,D.) also discusses the definitions given by other schools of philosophy and ultimately rejects those with sufficient logic 13

I

Akalanka, the famous Jaina logician during the last part of 7th Century A. D. opines that *pramana* is that which is uncontradicted and which manifests the unknown objects. 14 Another Jaina scholar of the first half of 8th Century A. D. says ; knowledge which is self-revealing and object-revealing and which is free from contradictions is called *pramana* viz., *pramanam sva-paravhasi badhavivarjitam* 15 *Manikyanandi* (First half of 9th Century A. D.), a follower of the great scholar Akalanka, defines the very term *pramana* by using the word '*-apurva-*' in the same sense as that of *Akalanka's*. He says : *svapurvartha-vyavasayatmakam jnanam pramanam*. 16 Here the word sva-seems to be taken from the definition given by Siddhasena (See note 15 above). Another jaina logician of 9th Century A. D., who prepared a learned commentary on Umasvati's *Tattvartha-sutra* which is called *Tattvartha-sliokavarttika*, does not support the view that the objects should be unknown and therefore, he removes the words like '-anadhigata.', '*-avisamvadi-*' and '*-apurva-*' etc. discussed above. He simply says : *svartha-vyava sayatmakam jnamam pramanam*. 17 Further, he also argues that the propositions given by others are useless. 18 This opinion of *Vidyanandi* is also supported by another great logician of 12th Century A. D. i e. *vadideva* Suri. 19 He defines the term *pramana* as knowledge which reveals itself and its objects, and which must be determinate. viz ; *sva-para-vyavasayi-jnanam pramanam*. 20 Thus it may be concluded that the logicians of 9th Century A. D. define the term as the determinate knowledge which reveals itself and the unknown objects.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Besides, Hemacandra (12th Century A. D.) in his *Pramanamimansa* suggests that *pramana* is the knowledge which possesses that quality to determine truely the nature of the objects viz., *samyagartha-nirnayah pramanam*.[21] This seems to be devoid of any error. Here the word '-artha-' has been included in the sense of object and the word '-samyak-' has the sense of judgment. Thus *samyak-nirnaya-* means judgmental right knowledge which is apart from doubt, error etc.

The definitions of *pramana*, given by prominent Jaina logicians if studied carefully, then we may classified those in two separate groups The old Jaina philosophers suggest that knowledge is *pramana*, which reveals itself and its objects; but Hemacandra does not support this view and he argues that knowledge is self-revealing, but it may not be identical with *pramana*. Further, he accepts that knowledge which is self-revealing includes the false ones and therefore, *pramana* may not be definied with the help of this self-revealness. Thus Hemacandra belongs to the second group.

The logic given by **Hemacandra** needs some discussion. If there were no knowledge, there would be no activity directed towards objects, Knowledge has such type of power to lead to an acceptance or rejection of things. In other words knowledge enables us to reject the false ones and to accept the real ones. Thus *pramana* itself may be knowledge. In support of our view we may refer to *Vadideva* Suri. In his treatise he argues that *pramana* is knowledge, because it gives us an opportunity to accept the acceptables and to reject those which should be rejected[22] Thus it may be said that there is nothing which is not coming in the sphere of knowledge.

II

In the history of Indian philosophy we have seven different views regarding the number of *pramanas*. The *Carvaka* system of Philosophy recognises Perception only and argues that all other

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

means of knowledge which are accepted by other schools have no validity. The Vaisesikas and the Buddhists opine that there are twe *pramanas* i.e. Perception and Inference. The *Samkhya* system adds veblal testimony to the *Vaisesion* and thus they have three pramanas The *Naiyavikos* accept four means of knowledge i e. Perception, Inferenee, Verbal Testimony and Comparison. The *Pravakaras* while recognise five *pramana* the *Bhattas* say that there are six means of knowledge The view of *Bhattas* is also supported by *Vedontins*. The *Pauraniks*, on the other hand, supe rcedes all the schools and they add two more *pramanas* to that of *Vedanta* schoo l's. 26

It may not be out of context to note that *Vyomasiv carya* (7th Century A. D.) in his famous commentary called *Vyomavati* argues that *Vaisesikas* have three *pramanas* along with the Verbal Testimony 24 The jaina scholar Hemandra al so supports *Vyomasivabarya* and says: *Pratyaksa-numanagamah Pramanani* iti *Vaisesikah*. 25 Almost all the commentators ont he *Vaisesika-sutras*, except the author of the Vyomavati commentary, admit that there are only two *Pramanas* in the *Vaisesika* system of Philosophy. *Prasastapada* (4th Century A D.) himself also believes two *Pramanas*, namely Percepand tion Inference, 26 Now it is interesting to marki hat Hemachandra ignoring all other scholars of *Vaisesika* school supports only *Vyomasivacarya*. It may not be argued that Hemachandra was ignorant about the *Vaisesikas*, because *Vadideva* Suri, another Jaina logician of 12th Century A. D. suggests that the *Vaisesikas* admit both the two fold and three fold divisions of *Pramanas*. 27 Thus, during the time of Hemachandra the view of *Vyomasivacarya* and the view of other scholars of *vaisesika* school was popular among the scholars and we have no reason why Hemachandra follows the former view only.

The Jaina Philosophers have only two *Pramanas*, but they are unique in respect of other systems of Indian Philosophy. They have accepted only two *Pratyaksa*. clear knowledge and *Baroksa* obscure

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

knowledge. Further, while all the other Indian thinkers opine that Perception is the prime cause of knowledge and therefore, it is the supreme cause, the Jainas simply reject this. 28

The great Jaina logician of 8th Century A. D. i e. Manikyanandi suggests that there are two Pramanas in Jainism and says *tadvidhesi* (II/1) and *Pratpaksetarabhedatiti* (II/2) Here *Manikyanandi* opines that one is *Pratyaksa* and the second is other than that but *Vadideva* Suri clearly states that one is *Pratyaksa* and the second is *Paroksa* viz. tad dvividham pratyaksam paroksam ceti. 30 This suggestion of Va*dideva* is also supported by Hemacandra. In the *Pramana-mimandsa* he gives two *Sutrw* in this regard, viz., *Pramanamdvedha* (I, 1, 9) and Pratyaksam pratyaksam ca (I, 1, 10). 31

The word 'ca' in the *sutra* PM, I, 1, 10 indicates that both Pratyaksa and Paroksa have equal force and therefore, according to Jains perception is not the head of other *pramanas* as accepted by other Indian Philosophers. 32

Generally, almost all the Indian thinkers accept that perception is produced through sense organs; 33 but the old Jaina philosophers suggest that the form *pratyakasa* is derived from *aksa*, means 'self'; which knows all objects in space and time 34. Thus they think that the knowledge, which is derived from self, is called *pratyaksa* and that which is not derived from self, is called *paroka* 35. Later on, the Jaina scholars like Akalanka, *Prabhacandra* (13th Century A. D.) argue that the knowledge produced through sense organs are also called pratyaksa and they termed it as *samvyavaharika pratyaksa* or *indriya pratyaksa*. Thus the Jaina Philosophers accept two kinds of *pratyaksa* i. e. the knowledge generated throogh self called *paramarthika prathykus* or *anindriya pratyksa*, and the knowledge produced by sense organs called. *samvyavaharika pratyk*sa Here the former one is also termed as *mukhya* pratyaksa 36.

Now, the opinion of Hemachandra is noteworthy. He says *aksa* means either self or sense organs 37. and thus both the *mukhya pratyaksa* and the *smvayavaharika pratyaksa* are accepted by him. Among these two, if we accept the ordinary sense of the word *mukhya* in he former one, it may be said that the former one is superior to

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

the latter. Though the Jains accept the knowledge which is produced by sense organs as *pratyaksa*, still the superiority is only that which is produced directly in the self, and the sensuous knowedge is *pratyaksa* in common practice or in the ordinary sense, but the real *pratyoksa* is the former one. Though both of them are direct knowledge, still the former one is direct in one sense and the latter one is direct in another sense.

It is an accepted theory that Perception generates clear knowledge and the Jains are not apart from this theory. In this connection *Akalanka*'s opinion is noteworthy. He says: *pratyaksa visadam* means, that what is clear is *prathaksa*. This is also supported by the other Jaina logicians like *Manikya andi* 38. Vadideva Suri 39. and Hemachandra 40. Since *pratyaksa* is regarded as clear knowledge, *paroksa*, which is a separate means of valid cognition is defined as obscure knowledge, as against clear knowledge, and therefore, Hemacandra opines : *avisadam paroksamiti* 41.

Thus in Jainism we have dual means of valid cognition, and the valid cognition is also devoid of doubt, error etc.

Address :-
Narendra Kumar Dash
Senior Research Fellow,
Dept. of Sanskrit,
Visva Bharati University,
Santiniketan-731 235

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

REFERENCES:

1. Cf , pramavah karanam pramanam, The Nyayamnjari, vanarasi 1971, P.-14.

2. Cf., yatharthanubhava-jnanam prama, The Nyayakusumanjali on the sloka IV/1; Banares, 1957, P.-450.

3. Vide the Nyayakosah, Poona, 1978, PP.-551-52.

4. In the Riqveda-bhasycpakramanika Sayana quotes from Parthasarathi Mishra that *anadhigatarthagantr pramanam*; The Rigveda *Samhita*, Vol 1, Poona, 1933.
This is also supported by *Narayana* in his *Manameyodayah*. He says : Here, as in the view of the logicians, means of valid knowledge is only the instrument of valid knowledge But valid knowledge is the knowledge of an unknown real object. viz .. *pramakaramamevatra pramanam tarkapaksavat prama bojnata-tattvarthajnanamevatra* bhidyate The *Manameyodayah*; Madras, 1933, P.-2.

6. See the-vrtti of the *pramanamimansa* ef Hemacandra on the *sutra* I, 1, 2 i.e. *yamyag-arthanirnaya-pramanam*.

6. Ibid.

7. See the *Nyayakosam*; Poona, 1978, PP.-551-52.

8. Cf.. *upalabdhiheluh purvam*; Tne *Nyayabhasyam* on *sutra* no. II, 1, 11.

9. Cf., *pramanamavisambadi jnanam*; The *Prama avarttika-tika*, 1-3.

10. Cf.. *anadhigatarthaniscayatmakam pramanam*; The *Sastradipika*, Banares, 1915, P.-122

11. *anadhiqatavisayanam vrtiau satyam budhestymo' abhiloave saiiyah sat-vamudrekae so' adhyavasaya iti vrttiriti jnanamiti bakhyayate idem tavat pramanam*; The *Samkhya-tattva-kaumudi*, Varanasi, 1971, P.-43.

12. Cf., *pramanamavisamvadi vijnanamiti Bauddhah, arthopalabdhihetuh pramanamiti Aksapadah, anaehigatartha gantrtvammiti Bhattah*, ajna-

tartha jnapakamiti (*Pramanasamuccava-tika*), *pramatrvyaparah pamonamiti Prabhakarah, adustnkaranarabdham pramanam lokasammatamiti Kumarilah.* Vide; S. C. Nyayacarya's article entitled" Jaina-darsanerdigdarsana" in Our Heritage, Vol. XIX, Pt. 1, 1971, P-13.

13. See the Pramana Mimansa; 1939; P.3
14. Cf., *pramanam avisambadi jnanam anadhigatadhigalaksanatvat*/vide; the Astasahasri Bombay, 1915, P—175.
15. Vide; the Pramana Mimanso; 1939, P—3.
16. See the Prameyakamalamamartandah, I; a commentary on the Pariksamrkha of Manikyanandi, Bombay, 1941.
17. Vide; the Pramana Mimansa 1939, P-3
18. Cf. *tadevanthavyavasayatmakam jnanam manyeta yatha, laksanenagat-arthatvat vyarthamanyam visesanam* vide; Above, 15.
19. Cf. *sva-para-vyavasayi jnanam pramanam*; See the Commentary called Syadvadaratnakara on the Pramananayatattvaloka, Bey-aver, 1942.
20. Ibid
21. The Pramana Mimansa on I, 1, 2; 1939
22. Cf., *abhimatanabhimatavastusvikaratirrksamam hi pramanam ato jna-namevedam*; The Pramananayatattvaloka I. 3, Beyaver, 1939.
23. Cf., *pratyksamekam carvakah kanada-sugatau punah* I
anumanam ca taccapi samkhyah sabdam ca te ubhe II
nsayakadesino' apyevamapamanamca kacana I
arthapatya sahatani catvaryahuh prabhakarah II
abnavasastmetani bhatta vedantinastatha I
sambhavaitihyayuktani iti pauranika jaguh II and also cf.
carvakastavedakam dvitayamapi punarbauddhavaisesiaku I
bhasarvajnasca samkhyastritayamudayanadyacatuskam vadanti II
prahuh prabhakarah pancakamapi ca vayam te' api vedantavijna I
satkam pauranikastvastakamabhidadhire sambhavaitihya yogat II
See the Manameyodaya of Narayana; Karika—6
24. For details see the article entitled : *Jainadarsaner digdarsana* (in Bengali); Our Heritage, Vol. XIX, 1961, PP. 14-15.
25. Ibid
26. See the Prasastapadabhasyah;

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

27. See the Commentary on the Pramananayattvaloka called the Syadvadaratnakara, Beyaver, 1942, P-313.

28. Raghunatha Siromani in his Anumitidhiti suggests : *atropjivyopajivakabhavah phalatah svarupatasca. pratyaksaphalasyanumityunuvyavasayoderanumityupajivakatve'api na sarva pratyaksamitistatha, anumitayastu sarvah saksat paramparaya va vyaptyadi pratyaksopajivikah puraskrtascayamupajivrktotkarsah.* This is also supported by other schools of Indian philosophy.

29. See the Pariksamukha of Manikyanandi.

30. See the Paramananayatattvalankara; Vijayadharmasuri Granthamala, Ujain.

31. See the Pramanamimansa; 1939 Sutras I, 1, 9 and 10.

32. Cf., *ca kara svavisaye tutyalastapanarthah; tena yadahuhsakalapramanjyestham pratyaksamiti tadapastham pratyaksapurvaktvaditarapramananamiti cet ? na, pratyaksasvapi pramanantarapurvakatvapalabdheh, ingadaptopadesadva bahnyadikamavagamya prazitasya trdvisayaoratyaksotpateh* : The Pramanamimansa 1939 P.—

33. Cf., *aksasyi aksasya prativisayam vrtti pratyaksam*; The Nyaya Bhasya on I, 1, 3.

34. Cf, *aksnoti vyapnoti janaii iti aksa atma*; The Sarvarthasiddhi Calcutta, 19˚0.

35 See the Tattvarthasutra. Atmananda Janma-satabdi smaraka, Granthamala (No.-1), Bombay.

36. For details see the Nyayakumudacandra of Prabhacandra, Bombay, 1938 and Bothra Puspa's' The Jaina Theory of Perception', Motilal-Banarasidass, 1976, PP. – 21-22

37. *asnute asnoti va vyapnoti sakala dravyaksetrakalıbhavat iti ekso jiuah*; The Pramanamimaasa on I 1, 10. and also cf. *asnute visayamiti aksamindriyam ca*; Ibid,

38. Cf., *visadam pratyaksam*; The prameya*lamartanda*, Bombay, 1941.

39. Cf., *spastam pratyaksam*; The *pramananayatattvaloka*, Beyaver, 1942

40. Cf., *visadam pratyaksam*; The *pramanamimansa*, 1939.

41. See the *pramanamimansa* for details.

—×—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Samiti and its importance in life

Vidyavaridhi Dr. M. S. Prachandia
M A. Phd. D. Litt
(Hony Director Jain Sodh Academy)

The expression 'Jain' has been used for him who has faith in the Shraman school. 'Jin' is the root word which means the conqu-uerer. One who brings under control all his Karmas is 'Jin'. The follower of 'Jin' are known as 'Jain'. There are Twenty four 'Jinas' who had preached Jainism all the time for the welfare of the human beings. Among the important teachings of Thirthankaras 'Samiti' is very important item.

To make one's life pure and prosperous there is a philosoplical term 'Samiti' to follow. I would rather like to write a few words about its importance. Samiti means carefulness. Carelessness in daily routine invites unnecessary miseries and botherations in one's life. By observing 'Samiti' one can breathe gladly and let breathe others too.

Careful movement, careful speech, careful eating. careful placing and removal of things and careful evacuation of excrement are the fiue kinds of samiti to be observed as.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सम्यग्गमनागमनं सम्यग्भाषा तथैषणा सम्यक् ।
सम्यग्ग्रह निक्षेपौ व्युत्सर्गः सम्यगिति समितिः ॥

Let us think over on the said kinds of samiti in brief.

CAREFUL MOVEMENT

We should always be careful before moving to and fro. This practice secures the life of poor worms, insect etc on the way and keep us away from all types of accidents too. By lack of careful movement people of to day are facing unexpected events and damage their golden hours of lives for nothing.

CAREFUL SPEECH

Never loose in talks. Loose speaker is always looked down in the society. Hard and high speech pinches others for nothing. unnecessary speech picks up qnarrel and misunder standings togather. therefore this type of samiti teaches us not to speak irrelevent and always be careful in our speech.

CAREFUL EATING

Man is vegetarian by nature. un fortunately the evil habit of eating animal food is on the increase, spreading far and fast in India. It looks as if we live to eat, and not that we eat to live. When ever we meet a friend some thing is as a rule offered and a refusal is considered rude. No body ever thinks, what we should eat or drink how many times and at what hours in the day or night. The consequence of non-vegetarian and irregular diet is distress, discontent, desease and death. Medical opinion is clearly against it. Therefore we should always particular about our diet.

Careful eating Samiti prescribes a very simple vegetarian diet in sun-rays to keep us away from unnecessary troubles.

CAREFUL PLACING AND REMOVAL OF THINGS.

An illiterate person does not know the consequence of placing or removal of things carelessly . An account of this, type of illeteracy taxes human beings for nothing. This kind of samiti prescribes the method and recommend to be coutious alert before placing and removal of things.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

CAREFUL EVACUATION OF EXCREMENT

We generally discharge urine even on the road, this practice dirtifies the locality and spreads disease. Carelessness of evacuation of excrement causes in the increase of many insects and worms. Therefore there is a recommendation of this kinds of samiti to discharge excrete-material [urine and motion] at the place where no location of tiny creatwures are available.

By observing these Samities we can live a hale and happy lifc as well as provide facalities to others to have a prosperous and pleasant life.

Mangal Kalash
394, Sarvodaya Nagar
Agra Road, Aligarh

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Jain athematics

PROFESSOR R. C. GUPTA'S RESEARCH WORK AND PUBLICATIONS

(Member, International Commission on History of Mathematics)

1. "Circumference of the *Jambudvipa* in Jaina Cosmography". Paper presented in the Seminar on Bhagvan Mahavira and His Heritage held, under the auspices of the Jainological Research Society, at the Vigyan Bhavan, New Delhi. on December 30 to 31, 1973. It was published in *Indian Journal of History of Science*, Vol.-10 (1975), pp. 38-46.

2. "*Mahaviracarya* on the Perimeter and Area of an Ellipse ', *The Mathematics Education*, Vol. VIII. No. 1 (March, 1974).

3. "*Mahaviracarya's* Rule for the Surface Area of a Spherical Segment : A New Interpretation". Paper presented at the Seminar on Jaina Studies. New Delhi, Oct 1974. and published in *Tulasi-Prajna*, Vol. I, No.-2 (April-June, 1975). PP. 63-66.

4. "Some Ancient Values of Pi and Their Use in India". *Math. Education*, Vol. IX, no. 1 (March, 1975), Sec B, PP. 1-5. The Jaina Value $\pi = \sqrt{10}$ is discussed on pages 2-3.

5. "Jaina Formulas for the Arc of a Circular Segment". Paper presented in the Seminar on Jaina Studies Sixth Session, Jaipur, Oct. 10-12, 1975. It was published in *Jain Journal* (Calcutta), Vol. XIII, no 3 January 1979) pp. 89-94.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

6. Review of S.S. Lishk and S. D. Sharma's paper "The Time of the Day Measured Through Shadow-Lengths in *Suryaprajnapati*" (ME 10, B 83-B 89) In the *Mathematical Reviews* (U.S.A.), Vol. 57 (1979), p. 731.

7. Review of L.C. Jain's paper 'The Kinematic Motion of Astral Real and Counter Bodies in *Trilokasara*' (IJRS 11,58–74) in *Math Reviews* (USA), Vol. 58 [1979], p. 3956.

8. Article 'Secret of a Mathematical Rule Given by Jinabhadra Gani' (in Hindi) sent in 1981 for publication in Acharya Deshbhushan Felicitation Volume (Delhi). Published in 1987 in Section on Jaina *Pracya Vidyaem*, 60-62.

9. Review of S.S. Lishk and S.D. Sharma's paper 'Role of Pre-*Aryabhata* Jaina School of Astronomy' (IJHS 12, 106–113), *Math. Review* (USA), Vol. 82 [1982], p. 1813.

10. Review of J.C. Sikdar's paper 'Eclipses of the Sun and the Moon According to Jaina Astronomy (IJHS 12,127-136). Ibid p. 18 3

11. Review of L.C. Jain's paper 'On the Spiro-Elliptic Motion of the Sun Implicit in the Tiloyapannati' (IJHS 13, 42-49) in the *Math matical Review* (USA) Vol. 82 (1982), p 3241.

12. Review of L.C. Jain's paper 'System Theory in Jaina School of Mathematics' [IJHS 14, 31–65], Ibid, p 4114.

13. Paper 'Decimal Denominational Terms in Ancient and Medieval India' [includes Jaina writers], Ganita *Bharati*, Vol. 5 [1913], pp. 8-15.

14. Paper 'The Jaina Value of Pi (n) and Its Occurrence Abroad' [in Hindi] presented in the International Seminar on Jaina Mathematics and Cosmology, Hastinapur, 1985 Published in *Arhat-vacana*, Vol. I, No. 1 [Sept , 1988], pp 15–18.

15. Note on 'Jinabhadra Gani and Segment of a Circle between two parallel chords' *Ganita Bharati*, Vol. 7 1985, pp 25-26.

16. Paper '*Mahaviracarya*'s Rule for the Volume of Frustum-like Solids', *Aligarh Journal of Oriental Studies*, Vol III [1986] pp 31-38

17. Note 'When There was no Unity in the Number-land', *Ganita Bharati*, Vol. 8, [1986], pp. 44-45 [under Pen name Ganitanand].

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

18. Review of R S. Lal's paper 'Development of Series in Jaina Mathematics' [ME 17,100–109] in *Math. Reviews* [U.S A.], Vol. 86 [1986], p. 3356,

19. Report on the "International Seminar on Jaina Mathematics and Cosmology' [Hastinapur 1985], *Ganita Bharati*, Vol. 8 [1986.] pp. 47-52, Reprinted in *Arhat Vacana* I (2) [Dec. 1988], 80–84.

20. Paper '*Madhavacandra*'s and other Octagonal Derivations of the Jaina Value $\pi = \sqrt{10}$', *Indian Journal of History of Science*, Vol. 21 [1986], pp. 131-139.

21. 'Chords and Areas of *Jambudvipa* Regions in Jaina Cosmography', *Ganita Bharati*, Vol. 9 [1987], pp. 51-53.

22. 'On the Date of Sridhara' [who is also claimed to be a Jaina]. Ibid., pp. 54-56 [under pen name Ganitanand] Also see item no 8.

23. Article 'Computation of Areas of Plain Regions and Mountains of the Jambudvipa' [in Hindi] published in *Tiloyapannatti*, part III, edited by C.P. Patni, 1988, introductory pp. 46-49.

24. A short note on B. Datta [Swami Vidyaranya] and his work on Jaina Mathematics. *Arhat-vacana*, First Issue [1988], p. 122 Also see items nos, 14 and 19 above.

25. 'On Some Rules from Jaina Mathematics' *Ganita Bharati*, Vol. 11 [1989], pp.18–26.

26. 'The Jaina Tradition of Finding Volume of a Sphere' [10 pp.] [in Hindi] sent to Delhi for publication in the Acharya Vimalasagara Abhinandana Grantha [sent on 10-9-90]

—×—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Brief Academic Biography of R.C.Gupta

Born in 1935 at Jhansi (U. P.) R.C. Gupta had his higher education at the Lucknow University. From there he passed M Sc. (Math.) examination in 1957 securing First position in order of merit for which he was awarded the Devi Sahay Mishra Gold Medal. He was awarded another Gold Medal for his achievements in sports.

For the last three decades; Dr Gupta has been doing research in history of mathematics with special reference to India He was awarded Ph. D by the Ranchi University in 1971 for a thesis in this field In 1986 he got honorary docterate from the World University (U.S.A.) He has done special work on Jaina Mathematics and published about 25 papers on the subject.

In 1979 Dr. Gupta started the international journal *Ganita Bharati* [ISSN 0972-0307]. He is an Indian Representative on the International Commission on History of Mathematics since 1972. By now he has already published about 300 articles.

For popularising and propagating ancient Indian mathematics, Dr. Gupta has already toured England Germany, Canada and U S A. He has delivered scores of lectures and presided over some scientific sessions. He has life-membership of about two dozen learned societies. He continues to work on ancient Indian Mathematics to which he is fully devoted.

Address :Dr. R.C. Gupta Porf of Math,
Birla Institute of Technology
P. O. Mesra, Ranchi--835 215

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Sri D.K. Jain Orienta sear

(YEA 9-90)

[Research candidates workin er the guid
the dept. fo orate degı

Name of the Teachers		Name of Research sch
1. Prof Dr. RAJARAM JAIN Head of the P. G. Dept. of Sanskrit & Prakrit H. D. Jain College, Arrah & Hon. Director D K Jain Oriental Research Institute; Arrah	1.	Dr. Harendra Prasad Singh
	2.	Dr. [Smt] Pramila Srivastava
	3.	Dr. [Smt] Shanti Sahu.
	4.	Sri Ishwar Dayal Prasad
	5.	Sri Nemi Chandra Jain
	6.	Dr. S. P. Jain
2. Dr. [Smt] Vidyawati Jain M. M. Mahila College, Arrah and Hon. Research Officer Sri D. K. Jain Oriental Research Institute Arrah	1.	Smt. Pushpa Srivastava
	2.	Sri Padam Kumar Jain
	3.	Smt. Shakuntala Kumari

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

:asearch Institute, Arrah

YEA9-90)

rkintr the guidance of Teachers of
. foorate degree.

ich	Title of Thesis	Date from which working
	अर्धमागधी आगम के अंग साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन	Ph. D. degree awarded on 1989.
ı	मुगलकालीन कुछ प्रमुख हिन्दी जैन काव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन	1988. (Ph. D.)
	कथानक रूढ़ियों के आलोक में अपभ्रंश के चरितकाव्य	1988. (Ph. D.)
	जैनागम साहित्य में वर्णित प्राचीन भारतीय भूगोल	Thesis submitted Viva awaited
	आचार्य समन्तभद्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व	,, ,,
	हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण-काव्य परम्परा	D. Litt Thesis under typing
	प्राचीन जैन साहित्य में वर्णित पारिवारिक जीवन	Ph. D. Thesis under Typing
	हिन्दी जैन व्रत-कथा साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन	,, ,,
	उत्तरकालीन हिन्दी जैन कथाओं के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का समीक्षात्मक अध्ययन	,, ,,

3. The Hon Director of the Institute Prof. Dr. Raja Ram Jain has been invited to deliver his Lectures in the—

   1. University of Madras in Nov 1990
   2. University of Delhi in Oct. 1991

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

'Bawangaja' Tallest Statue in the world,

M. M. Verma

It is 150 Km. away from Indore (M.P.) and is situated over the beautiful Vindhya Range, this statue of the 1st Teerthankar Lord Rishabhdeva is the tallest in the world.

Choolgiri is the name by which this holy place is wellknown and this is the highest mountain range of Vindhyachal and Satpura. It is said that Raja Arkkirti got this huge stone figure carved out from one piece of stone which is brown in colour. Bhattarak Yati Madan Kirti, a scholor of 12th century, has mentioned in one of his manuscripts Shasan Chatustrishika about this image and therefore this huge statue is supposed to be about thousand year old.

There are many other statues over the Choolgiri Hills and they were repaired by Bhattarak Ratna Kirti in V.S. 1560. Again in V.S. 1979 this 84th high statue is known to have been painted by thin coat of locally made pure adhessive emulsion and gradually stair were constructed to facilitate the pilgrims in the performancea of 'Panchamrit-Abhishek' but the upkeep and maintenance of this marvelous piece of ancient stone work has been very poor and as such sufficient damage has been done to warrant immediate repairs

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

piece of ancient stone work has been very poor and as-such sufficient damage has been done to warrant immediate repairs. A master plan has been now prepared under the leadership of All India Dignmbar Jain Tirth kshetra Committee and expert guidance of Padmshree R. N. Sengupta, Retired Director General of Archeology, Govt. of India and on the spot inspection and study of the Colour job was made by Shri Ashok Jain, President All India Tirthkshetra Committee and leaders of Indore Barawani Samaj. Sri Senguputa has presented a number of practical suggestions for removing the old painted emulsion and putting up chemical treatment under expert guidence for restoring the huge image to its original condition and also to remove the new construction around the images which was made in V.S. 1979 for 'Punchamrit-Abishek.'

It is also suggested that 'Punchamrit Abhisek' should be performed once a year, and that new walls should be constructed to strengthen the hillock over which the image is standing.

Shri Babulal Pataudi who is convenor of the Jirnodhar Samiti is reported to have said that first stage of repair work would be completed by the year 1989. In the year 1990 'Maha-Mastikabhishek function would be organied on a grand scale which is expected to attract about 5 Lakhs pilgrims.

The entire master plan is based on a budget expenditure amountipg to Rs one crore. Ample space for aecomolating the pilgrims is going to be constructed, A school and a hostel for the education of the Adivasi children of the area will also bc constructed and Madhya Pradesh govt. is being approched to cooperate in the project.

It is certain, after the compeletion of the project place is going to attraet tourists from all over the world besids a large namber of pilgrims, who naturally come ts perform religious rites.

We are giving below a detailed measurement of this 84ft high statue of 'Lord Rishavdeo jee'.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

1.	Heght		84ft.
2.	Arm to Arm measure		29ft. 6 inches
3.	Armto Fiargertip measure		46ft. 4 inches
4.	Waist to heel	,,	26ft.
5.	Feet length	,,	13ft. 9 inches
6.	Nose length	,,	3ft. 11 inches
7.	Ear length	,,	9ft. 8 ,,
8.	Ear to Ear	,,	17ft. 6 ,,
9.	Foot-Palm width	,,	5ft.

Devashram. Ariah

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

News and Reviews

— Arvind Kumar

—Acharya Kundkund Prize-was given away by India's ex-vice President Dr. B. D. Jatti at Mahavir College Kolhapur on Jan. 20, 1990. Prizes carry cash award of Rs. 5000/-- and has been awarded to Dr. Hem Chand Jain, Karanja, Dr. Vilas Sangwy. Kolhapur. Dr. Nirmal Kumar, Phaikuloy [Sholapur] Pt Dev Kumar Shastri (Moodbidri) Dr. Subhas Akkodey (Jaysingpur) Dr. B. K. Khadbaddi (Sankeshwar) Dr. M. P. Magnigar (Poona) Dr. S. K. Dharmraja (Delhi) & Dr. Aditya Prachandiya (Aligarh).

—Arrah (Bihar) Jan. 1990. Acharya Kundkund Jayanti was celebrated at Chandra Prabhu temple after a Shobhayatra. Dr. Rajaram Jain & Dr. Vidyavati Jain were honoured for their Joint editorship of a Hindi publication viz. Acharya Kundkund. Later Dr. Rishabh Fouzdar spoke on life & philosphy of the Acharya. Prof. Rakendra Jain conducted the proceedings.

—Dugarpur 9th May 1990. Pujya Acharya Sri Ajit Sagar Jee Maharaj has attained Samadhimaran and his dead body was burnt to ashes according to full rites prescribed in religous scriptures. Pujya Acharyaji was 4th in line of succession as Pattadhish of Charitra Chakravarti Pujya Shanti Sagarjee Maharaj being the first guru. Arrah Jain Samaj and Bhawan Parivar convey their most respectfull homage to Acharya Shri.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ARHAT-VACHAN-- The first Jain Journal dedicated to Science, Mathematics, Geography and Astrology now publishes its March 199J issue being the 2nd issue of its 2nd year of publication. There are 6 articles in English (1) Jain Astronomical Text, belonging to the Pre-Siddhantik period of Ancient India (2) Jain Eras and their Chronology (3) Bio Chemistry of violence (4) Resemblance of Indian Japanese and Chinese Mathematics (5) History of medevial Jainism in Telgu-desh (6) Sri Behuvalaya of Kumudendu, their Chronology. This would be of interest to those intrested only in English.

It is good that the Magazine which is being published every 3 months has a dedicated editor-Sri Anupam Jain, Asst Lecturer of Mathematics of Government College Sarangpur 465 697. Such research magazines are difficult to run without one like him and also without enough financial support from publishers which in this case is forth coming from Sri Deo Kumar Singh Jee Kasliwal of Kund-kund Gyanpith 84 M.G Road Tukoganj, Indore (M. P.) 452 001, India as also from valued advertisers. Printing and paper cost have gone up tremendously and it is therefore that the price of each volume has been fixed at Rs. 100/- Let us hope that the Madhya Pradesh Govt manages to help and order for copies of this very useful journal to be subscribed by all Colleges and Schools and Libraries, otherwise not even 100 people can willingly subscribe such a journal because very few can understand and enjoy such journals. In most cases the publishers send complimentary copies to most of the Scholars, who can enjoy reading such journals and in return may be pleased to send good articles for publication.

We wish this journal a very long life. This issue has 13 articles 6 in English and the rest in Hindi which are non the less useful. Rather they are very learned ones dealing in Jain Eras, Geography, Karam and Mathematics. Editorial Board is impressive. —S. K.

RAIDHU GRANTHAWALI PART-II

Satna 11.4.90 Pt. Jagan Mohan Lal Shastri performed the inauration ceremony of Raidhu Granthawli Part II, edited for

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

the first time by Dr. Raja Ram Jain, Arrah and published by Jeevraj Granthmala, Sholapur.

On this occasion Dr. Sanghi Director of Sahu Sodh Sasthan, Kolhapur expressed sorrow that these high cost expensive books have very few purchasers and hence the Granthmala is incurring heavy losses He appealed to every body to take a vow to purchase Jain literaturre of atleast Rs 500/- every year to help in the sale and publication of unpublished Jain literature.

Dr. Rajaram Jain was highly complimented for his contribution in the field of Jain literature by Pt. Manik Chand Chavre, Dr. Kasturchand Kashliwal and Pt Jaganmohan Lal Shastri.

ACHRYA VARDHMAN SAGARJI

New Delhi 16-5-90 The Acharya was installed the 5th Acharya in line of sucession after the sad demise of Acharya Sri Ajit Sagar Maharaj. It should be noted that Acharya Sri Pujya Santi Sagarji was the 1st Acharya of the Sangh.

PRAKRIT VIDYA, (HINDI)

Editor Dr. Premchand Suman, published by Prakrit Adhyayan Prachar Kendra. Udaipur.

We have in our hand Jan-March, 90 i.e. Vol 1/4 issue of this new and attractive Journal. It is dedicated to Acharya Kundkund's 2000 year of his birth celebration. This is Acharya Kundkund Visheshank (special number), It contains 8 good and valuable articles by reputed scholars. This journal is basically a quarterly on Prakrit studies and cultural values and deserves to be on the shelves of all libraries and Colleges, specially those which are working in the field of Jainism, Prakrit and Sanskrit.

MAHAMASTAKABHISHEK

Karkal Karnatak April 15-After a gap of 28 years the Mahamastika Bhishek was performed of 42 ft high Bhagwan Bahubali The new Bhattarak Sri Lalit Kirtiji made good efforts for the great event.

ASIAN JAIN CONFERENCE

Sigapore-4th March 1990, Led by Muni Sri Sushil Kumar, the Asian Jain Conference was successfuly held here on the 3rd and 4th of March. Steps were taken to proprogate the tenents of Jainism both among the Jains living outside India and also amongt lovers of Ahimsa

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Babu Prabhudas Ji Memorial Article-13

Babu Prabhu Das Ji founder of Prabhu Das Pariwar (Dynasty)

- J. K. Jain

Babu Prabhudasji, grandfather of Babu Deo Kumar was born at Benares in the year 1813 A. D. His father was Sri Ganeshl Lalji, son of Sri Mavasilal ji, who had migrated from Sahjadpur (U.P.) to Benares in the year 1800 A D.

He got his house constructed and lived at Benares at Bhadaini Ghat on the bank of the majestie Ganga and also purchased a few other properties in the year 1815.

Prabhudasji was married in 1830 and came in elose contact with poet and saintly person Kavi Vrindavan who had migrated from Arrah. They stiedu Jain scriptures and discussed for preservation of Mannscripts and temples and also other aspects of Jainology. They lived a religious life. Vrindavanji was a born poet and he wrote several poems and devotional songs which soon became popular in the entire Hindi belt among the 'Srawakas' who visited Jain temples to pray and perform pujas,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Prabhudasji got the inspiration and he also started composing devotional poems. One such poetie work Dudharas Katha written in his own hand is available in the Jain Sidhant Bhawan Library. This was later printed in the Jain Siddhant Bhasker & Jain Antquary. Thereafter he came in touch with the famous poet Vinodi Lalji of Sahjadpur during his visit to the old city of his fore fathers. This contact enhanced his interest in hand written Jain manuscripts, which were not being cared and were getting destroyed every where. He started collecting such ancient manuscripts at Sahjadpur and continued doing so during his pilgrimage to Kaushambi and elsewhere.

He was agrieved to find this holy place littered with ancient pieces of antiquity. The village kids even sold them to visitors for a paisa each. He put the holy earth on his fore head. and vowed for it renovation which was known as the birth pace of the sixth Tirthankar Lord Padma Prabhu and the kingdom of ancient Vats-Desh, which covered Prayag (modern Allahabad).

Subsequently, he went on a pilgrimage on foot to Phaphosa (Prabhas Giri , a small hill 8 miles away where Lord Padma Prabhu spent years in penance and attained Kewal-Gyan (full knowledge). He collected some uncared and damaged manuscripts while he was going through the villages of Champaha bazaar, Pali and Garhwa enroute Phaposa.

There efter he came to Arrah along with poet Brindaban. He had in his mind to visit Patna, Pawapuriji, Rajgrih, Gunavaji, Kun--dalpur (Nalanda) and then to Parasnath. He was a person who immediately set upon doing things which he decided to do. During his Journey to all these Holi places he went asking the Jain families every where to take good care for the preservation of the ancient manuscripts and save them from decay and damage Many people took the vow and started safe-guarding these valuable manuscripts but those who could not do it, handed over their manuscripts to him. This became the starting point 160 year ago. of the movement for safe-guarding and preservation of ancient Jain manuscripts.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

He become the moving spirit which ultimately inspired 73 year later his grandson Deo Kumar Ji resulting is the establishment of Sri Jain Sidhant Bhawan in 1903 A.D

Babu Deo Kumar Ji had the same interest for preservation of Jain manuscripts and he made it an all India Movement travelling all over South India mostly an bullock carts and on foot, whereever the Railways were not available and then to Bombay and north India back to Arrah when he fell seriously ill and died at Calcutta in 1908 when he was only 31

Babu Prabhudas an his return from his pilgrimage of holy places is Bihar and Uttar Pradesh shifted from Varanasi to Arrah

In 1834 he started repair work of the famous Kaushambi temple. His studies were multi-lingual, Besides Hindi, he knew Sanskrit, Urdu & Persian very well and his interest in manuscripts kept him busy is his studies.

In 1835 he shifted to Arrah and at the age of 24 took the vow of taking food only once in 24 hours and that also after performing 'poojas' and this he unflinchingly followed this vow till his death.

In the mean time he came is close touch with Pt. Parmeshthi Sahay and Pt Jagmohan Dasji both scholars of Arrah and had contact with Pt. Sadasukhji a noted Pandit of Jaipur.

Babu Kuar Singh was a famous Zamindar of Arrah district distinguished for his valour and anti English leanings Prabhudasji became friendly with him and even visited his princely head quarter at Jagdishpur, in the year near about 1842. He procured a gift of land at Arrah in the name of Lord Chandra Prabhu. Idols in this temple mention Ara as Aramnagar. Later Prabhudas Ji got his 1st daughter Kundan Bibi married to Keshardasji, son of Pra dumana Kumarji.

He met Bhattarak Jinendra Bhushan in 1851 and took a vow from him to construct 6 Jain temples. Sometimes later he brought pre fabricated stone temples for construction at Kaushambi, Pali. Sahjadpur Bhadaini (Benaras) and Chandrawati and got constructed a Shantinath temple over his residential house at Arrah. He got work started at the above six places one by one as vowed by him He also got Dharamsalas constructed at Kaushambi. Chandrawati and Bhadaini.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

The palace like Dharmshala at Bhadaini on the bank of Holy Ganges, adjacent to his residential house. now houses the famous Syadvad Sanskrit Maha Vidalaya founded by his grandson Deva Kumarji and the famous saint Ganesh Prasad Ji Varni.

He performed Panch Kalyanak Pratishtha at Bhadaini (Varanasi) in 1863 under the guidance of Bhattarak Rajendra Bhushan of Gwalior, later in the year 1874 he tooke over charge of the famous and most coveted place of pilgrimage for Jain Samed Sikherji Parasnath from Bhattarak Rajendra Bhushanji This very year he married his only son Chandra Kumarji to chegan Bibi nice of Babu Bachu Lalji of Munshi-khana of Lala Shahkar Lalji. This last funchion he performed from his newly acquired princely house now famous as 'Devashram.'

He died in the the year 1877 at the age of 64 leaving behind a large family, including four son-in-laws, a son, a daughter-in-law and a grandson Babu Dev.Kumar who was born in same year on the 7th of March and, of course a large Zamindary property and a number of house properties, temple and Dharmshala at various places. Last but not the least he left behind a large number of friends and relatives to mourn his death including a sacred bogey of religious and charitable out look of life which is still cherished by his very large number dicendants, spreading over a dozen places.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Babu Prabhudas Ji Memorial Article-14

Chronlogical Life history of Babu Prabhu Das Ji (1813-1876) of Arrah

By

Vidushi Ratna Pt. Brajbala Devi

Translated by—Smt. Usha Kumari M.A

(He was the grand father of Babu Deo Kumar Jain and it was he who started collecting old manuscripts in the year 1832 A D. These were the manuscripts stocked in several boxes which Babu Deo Kumar ji donated and laid the foundation stone of Sri Jain Siddhant Bhawan in the year 1901 A. D. and there-after built up this great Institution).

1857 V.S. (1800 A.D.)

Lala Mawassi Lalji grandfather of Babu Prabhudasji left Sahjadpur (U.P.) along with his three sons Sri Ganeshi Lalji, Sri Mithoo Lalji and Sri Ram Lalji and settled at Varanasi with his family. At one time there were a large number of Jains and Jain temples in the town of Sahjadpur, but with the change of times it did not remaned so, nor did it even remain a Trade Centre.

1859 V.S. (1803 A. D)

In this year was born Prabhudasji the first son of Shree Ganeshi Lalji.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

1872 V.S. (1815 A. D.)

Revered father, Shri Ganeshi Lalji had acquired land and house at Bhadaini, Varanasi on the bank of river Ganga.

1889 V.S. (1832 A. D.)

(i) Babu Prabhudasji went to his ancestral place at Sahjadpur and collected the ancient idols scattered among the historical ruins of Kaushambi the capital of the old 'Vatsa Desh' near village Kosam on the bank of Yamuna. After sometime he installed them in his Jinalaya situated in Mohalla Mahajan Toli at Arrah.

(ii) He came in close contact with the famous poet Vinodi Lalji of Sahjadpur.

1891 V,S. (1834 A. D.)

He began the repairs of Kaushambhi, Garhwa. He continued the difficult task of collecting ancient manuscripts and pictures and keeping them well maintained. The work of religious studies and meditation had been going on. He knew Sanskrit, Hindi, Urdu & Persian languages and of reading and study of literature in these languages continued.

1892 V.S. (1835 A.D.)

He took over the work of the Arrah branch of the Trading firm Dulhinji Kothi. By filing an appeal on his own cost for the realisation of one lac of rupees in a court of law against a vanquished and abandoned case of a friend and realising the amount, Babu Prabhudasji gained tremendous fame by returning that money to his friend after deducting only the mere expenses of the suit.

1893 V.S. (1836 A. D.)

Babu Prabhudasji took upon himsef the penace of a single meal at the young and tender age of 24 years only and observed this vow uninterruptedly for the next forty years of his life. He also observed the principle of taking his meal only ofter performance of elabrate worship and Piya He followed this rule also with devotion all his life During this very period there were two scholarly

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

poets at Arrah, Pt. Parmeshwari Sahay and Pt. Jagmohan Das, who remained engaged in studying and writing classical works of Jainology. About them. Dr Nemi Chand Shashri has written (in Tirithankar Mahavir Part 4 Page 305) by which it is learnt that Parmeshthi Jee had sent his work 'Artha Prakashika' to Pt. Sadasukhji, resident of Jaypur who was a well-known expert on the subject.

The work of Pt. Jagmohan Lalji under the caption Dharmratnodyot had been published already under the editorship of Pt. Pannalalji Bakliwal. These two personalities can not be separated from the history of Hindi Jain literature.

1896 V.S. (1839A.D.)

From his first wife the only daughter Kundan Bibi was born who was married to Sri Keshar Dasji, son of Babu Pradyumna Kumar a Rais of Arrah. In this very year Sri Pradyumna Kumar Ji got built the famous Sri Chandra Prabhu temple at Arrah. The freedom fighter Babu Kunwar Singh had donated land. The worth seeing idols of Yaksha and Yakshini Jwalamaliniw ere also in stalled here. The name 'Aram Nagar' has also been found engraved in the idols instead of 'Arrah Sahar.

1907 V.S. (1850 A.D)

Babu Prabhudasji began purchasing Zamindari at Arrah The work of research and studies of Sanskrit and Hindi manuscripts were continued by him. He himself also was a writer and imparted religious instructions to his sons and daughters. Much of his time were devoted to prayer and worship. During journeys he kept tied round his neck alittle gold idol kept in a small case so that the rule (Vrata) of his taking food only once a day and only after prayer and worship, might never be broken. That little cherished (Manogya) idol is still available, He got his clothes washed at home. He daily got oil massaged and kept a limited use of dresses.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

1908 V.S, (1851 A. D.)

The well known Bhattarak Jitendra Bhushan of Gwalior Gaddi made Babu Prabhudasji accept the task of building temples. When he expresed his inability, Jitendra Ji said, 'accept the task; good work should surely be completed.

1910 V.S. (1853 A.D.)

He got built a big Dharmshala and Ghat near his residence on the bank of the Ganges at Bhadaini and the Manogya temple of the Tirthankar Supareas Nath Prabhu in the hallowed memory of the birth place of the God. Even today that Ghat is called Prabhudas Jain Ghat. His grandson Deo Kumar Ji established the Syadwad Mahavidyalaya at this very place in course of time.

1912 V.S. (1855 A.D)

He got the investiture ceremoney of the Bhadaini temple, Varanasi performed on the 5th Sudi (Moonlit date) Sunday evening during Revati Nakshatra along with all his three brother's Shri Arhantdas, Shri Jineshwar Das and Shri Muneshwar Das. The engraved writing on the stone is printed in the 41-1 number of the Bhaskar of June 1988. He had already came in contact with the Freedom fighter Veer Kunwar Singh. He had given his coopration to the best of his ability in the fight for freedom, before 1857, and also during the struggle, like a friend.

1915 V.S (1858 A.D.)

In this year his son Babu Indra Kumarji was born by second wife. He had three daughters also by her, two of whom were married at Arrah and the third at Chhapra. The three were named Manno Bibi, Kanno Bibi, and Chhanno Bibi.

1918 V S (1865 A. D)

The story of Dudharas composed and hand written in verse by the scholar Prabhu Dasji in 11 Pages and 58 stanzas (Chaupaiyan) is found in the issue of Baishakh Sudi 9 Sambat 1918 Friday which

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

is abailable in the Bhawan. It has beenpu blished in the December 1988 issue of the Jain Sidhanta Bhaskar. It is believed that there are other poetical works also of Pt. Prabhu Dasji.

1919 V.S. (1862 A. D.)

He brought chiselled stones of the same shape at Kaushambi, Pali, Phaphosa and Chandrawati. He began the work of the renovation of Kaushambi (Garhwa) and of building new temples He purchased land for the construction of a temple at Pali. The work of the construction of the Kaushambi temple and the Dharmshala was completed later on by his son Babu Chandra Kumarji. The foot-wear (CHARAN-PADUKA) in the old temple of Padam Prabhu Bhagwan dates back to Sambat 1600.

1920 V.S (1863 A. D)

After constructing a big steeplte-bouned temple on the roof of his residential house in Mahajan Toli at Arrah, he got installed about a four-foot high Khadgason idol of Tirthankar Shanti Nath. He had also been influenced by the teachings of Bhattarak Rajendra Bhushan belonging to the thirteenth generation of the Gwalior Dynasty. He established many ancient statues collected from the ruins of Kaushambi and from many other places. He safely preserved the aneient manusrcipts collected by himself.

1927 V.S. (1870 A. D.)

He established a Chaityalaya of the Tirthankar Shital Nath at the top of his new building at Mahadeva the present Devashram. He started living at this very place.

1930 V.S. (1873 A. D.)

The younger brother of Babu Prabhu Dasji, Babu Jineshwar Dasji looked after the work of litigation etc. He had no issue.

1931 V.S. (1874 A. D)

Bhattarak Rajendra Bhushan Ji of the same Gwalior- Gaddi handeo over the affairs of the firsttete managing commi of Sri

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

Sammed Shikhar, in the charge of Babu Prabhu Dasji. His son Chandra Kumarji was married to Chengan Bibi, the cousin sister of Sri Bachchu Lal Jain of Munshi Khana, Arrah. big oil painting bortrait of Chengan Bibi is still beuantifying the Bhawan. The photographs (picture) of Babu Prabhu Dasji, his brothers, his son Chandra Kumar, and his second grand son Dharm Kumarji are not traceable.

1933 V.S. (1877 A. D.)

Babu Prabhu Dasji left for his heavenly abode at the age of 64

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

BOOK-REVIEW

Name of the Magazine	—	**Jain Digest, Year- 1**
Volume	—	**3, June/July 1990**
* Editors	—	**Sh. I C Jain (Retd. I A S.)**
*	—	**Smt. Ravindra Singhvi**
*	—	**Bhupal Sood**
Editorial Office	—	**Muni Kumud Kumar Centre of Jain Culture 1619/6-B, Uldhanpur NavinShahdara, Delhi 110032.**

This is latest edition of a good magazine and it has been fairly well done. All the articles are good and informative. With the growing demand of books and periodicals in the English language due to the awakening among the Jain settlers in England, Canada, and U S.A, to the necessity of imparting knowledge of Jainism to the coming generation in foreign countries, any English Journal on Jainsm which can attract the young people in foreign countries will be widely welcomed. I will advise the publishers to get in touch with the Jain centres in England, Canada & America. I wish this new Journals all success. —(S. K. J.)

Ac. Gunratnasuri MS	Jin Gun Aradhak Trust

Book-Review

Structure and Functions of soul in Jainism.

Writer :—Dr. S. C. Jain Price Rs. 20/- only

It is a BharatiyaJ nanapith Publication. This book had the distinction of having emenint Scholars-Siddhantacharya Pt. Kailash Chandji Shastri and Dr Jyoti Pt Ji Jain as General Editors.

They are no more. This book has to be introduced to the scholars and students alike. It will be unusual but nothing better can be written about this book than what has been written by very able General Editors as under : –

Philosophy is an enquiry into the nature of life and of existence; and this way of dealing with reality depends on the exercise of thought and reason Since the dawn of human civilization, numerous thinkers, in different time and climes, have applied themselves to solving the riddle of the universe, to unraveling the mystery of existence and to explaining what life really is. Consequently, we have quite a good number of schools of philosophical thought, often contradictory or widely divergent, such as Nihilism, Materialism Spiritualism, Idealism, Realism, Neutralism, Sensationalism, Assocmationism, Structurism, Monism, Dualism, Pluralism, Absolutis- i Nonabsolutism and so on.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

In the midst of this conglomeration of philosophies stands out the Jaina system which starts with the scientific postulate ex nihilo nihifit, and is thus grounded in reality. It may look strange, that although it is a very accient Indian system, it is highly peculiarly consistent with modern realism and modern science. Since it establishes the existence of soul and matter as the two separate, distinct, independent and immutable entities, it is often described as a dualism or dualist realism, Again, since each of the two catogories comprises infinite individual entities, the system may also be called a realistic pluralism. The fact that every real is dynamic owing to the co-presence in it of change and permanence, gives it the character of a realistic dynamism Morever, since an absolute unqualified affirmation of existence is not in conformity with the nature of reality, the Jaina philosophy affirms the possibility of diverse attributes in a unitary entity, which fact characterises the system as a non-absolutist one Position and negation are obtained simultaneously in a real, wherefore unqualified existence or non-existence is meaningless, unless qualified by proper context, not only for the sake of predication but also for the sake of existence. The Syadavada logic helps a clear grasp of the truth which is Anekantic (non-absolutist) in its essence, and with its powerful organ, the seven-combinational mode of predication it enabled the Jaina philosopher to avoid adopting philosophical extremes like the nihilism of the Buddhists and the absolute monism of the Vedantists and to steer clear of the shallow realism of the Charvakas and the ludicrous idealism of the Nyayavadins.

The soul being the terminus a quo as well as the terminus ad-quem of his pursuit, the Jaina philosopher goes on to explore at length its structure and its varied function, hence incidentally its relationships with matter, where in lie the roots of the Jaina doctrine of Karma, the soul's efforts to shake off the Karmic shackles and attain liberation, the state in which the pure and perfect soul lives in omniscience and unalloyed everlasting bliss.

In the present thesis, Dr. S. C. Jain, its learned author, has presented a detailed, critical and comparative study of the Jaina

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

conception of soul, its structure and its functions, against the background of the Anekantic philosophy and Syadvadist dialectics, in a lucid manner. Connected topics like Jain epistemology, eschatology, liberation and omniscience have been paid due attention.

The chief merit of this work lies in the fact that it examines almost every aspects of the Jaina conception of soul in context with other systems of philosophy, particularly the western thinkers of the modern age, and has also not left out Indian writers on the subject. For the Jaina view, he has generally gone direct to the originel texts.

This book should be a welcome addition to modern philosophical literature and would certainaly help in understanding and rightly assessing the Jiana conceptions.

We congratulate Dr. S. C. Jain for producing this vatuable work and are thankful to him for giving it to the Bhartiya Jnanpith for publication.

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

READ

VALUABLE BOOKS ON JAIN PHILOSOPHY

Essays on Epigraphy, Comparative Philosophy Religion and Anthropology : An Oriental Perspective (Reprint) / E. Moore — Rs. 325

Jaina Monuments of Orissa / R. P. Mohapatra — Rs. 600

Abhidhanarajendrah : Jain Encyclopaedia A Dictionary of Prakrit Magadhi to Sanskrit in 7 Vols. (Reprint) / Vijayarajendra Suri. — (Set) Rs. 10000

Available from :

D K P D (P) LTD.
1, Ansari Road, Darya Ganj
NEW DELHI - 110002
Ph. : 3278368, 3261465

DISCOUNT OFFER

While Placing Order Write Code No.

DK / Ad. / 2 3 and Avail 10% Discount

गुप्तित्रयों पंच महाव्रतों का
पांचो समिति का उपदेश देकर,
प्रवचन दिया है बारह तपों का,
तं पुष्पदन्तं प्रणमामि देवम् ।९॥
ब्रम्हव्रतों तक जिन ईश ने जो
उत्तम क्षमा आदि दसों सुधर्म का
उपदेश है दिया व्रत बन्ध बुद्धि से
तं शीतलं तीर्थंकरं नमामि ॥१०॥
गुणी जनों के आनन्द दाता
क्षमा महावीर, प्रशान्त चित्त हैं,
जो द्वादशांगी श्रुत को सुना गए
श्रयाँस को नमूँ जिन ईश ऐसे ॥११॥
मुक्ती रमा को करके सुशोभित
विशाल रत्नत्रय के मुकुट से,
स्वीकार कर श्रेष्ठ किया जिन्होंने
तं वासुपूज्यं प्रणमामि वेग से ॥१२॥
ज्ञानी विवेकी परमः स्वरूपी,
ध्यानी व्रती प्राणि-हितोपदेशी,
मिथ्यात्वघाती शिव सुख मिला जिन्हें,
ऐसे बिमल को कहता 'नमामि' ॥१३॥
अन्तर तथा बाहर के अनेकों
परिग्रहों को परित्याग करके,
सुमार्ग जिनने हित का दिखाया,
वन्दे जिनं तं प्रणमूँ अनन्तम् ॥१४॥
नौ ही पदार्थों औ तत्व सात ही
पंचास्तिका एवं काल-द्रव्य का,
छः द्रव्य उपदेश दिया अलोक का
उन धर्म प्रभु को 'प्रणमामि' कहता ॥१५॥
जो चक्रवर्ती पंचम हुए हैं,
भू पर हुए बारहवें मदन जो,
निधि के प्रभु सोलहवें जिनेन्द्र हैं,
उन शांति प्रभु को 'प्रणमामि' भेद से ॥१६॥
पाकर प्रशंसा जिनको न हर्ष है
निन्दा करो, पर जिनको न रोष है
व्रत शील से ब्रह्म पद मिला जिन्हें,
उन कुन्थ प्रभु को 'प्रणमामि' हर्ष से ॥१७॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

म संस्तुती नहि प्रणाम करते
पद प्राप्त केवलि, जिनको सभा में,
आदर करें अन्तर्गण अपूर्ति को
देवाधिदेव अरनाथ प्रणाम उनको ।।१८।।

रत्नत्रयों का पहले भवो में
जिनने किया व्रत सुपवित्रता से
शरीर-वाचा-मनसा विशुद्धि से
उन मल्लि प्रभु को प्रणमामि भक्ति से ।।१६।।

लोकांतिको की स्तुति को सुना जभी
बोले प्रभु 'सिद्धनम.' तथा किया
अपने करों से निज केश लुँचन
बन्दे जिनेश्वर मुनिसुव्रतं उन्हें ।।२०।।

विद्याधिपति नाथ तार्थंकर तुम्हें,
आहार का दान विशिष्ट जब दिया
नृप गृह हुई तब वर्षा रतन की
प्रणमूँ नमूँ मैं नमिनाथ प्रभु को ।।२१।।

राजीमती को परित्याग करके,
स्थित मोक्ष में, अब पुनरागमन नहीं
सर्वेषु जीवेषु दयालु दानी
प्रभु नेमिनाथं प्रणमामि भक्ति से ।।२२।।

सर्पाधिपति ने वैरी कमठ के
उपसर्ग को झेल लिया फणों पर,
धरणेन्द्र रक्षित तुम ध्यान में थे,
नमामि पारस प्रभु को विनय से ।।२३।।

भव सागरे जन्तु समूह जन को
जिनने बचाया सत् धर्म नाव पर
मझधार को तीर्थ किया जिन्होंने,
श्री वर्द्धमानं प्रणमामि देवं ।।२४।।

वीर सं० २५०२ —०— देवाश्रम, आरा

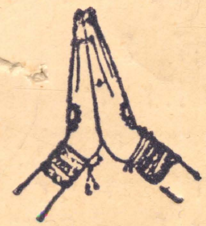

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust